कबीरदास के 'सूरमा' के जीवंत प्रतीक
बंगबंधु शेख मुजीबुर्रहमान के लिए

कबीरदास

डा० कान्तिकुमार,
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
कमला राजा स्नातकोत्तर महाविद्यालय
एवं
निदेशक, भाषा-सर्वेक्षण शोध परियोजना, जीवाजी विश्वविद्यालय,
ग्वालियर

किताब घर : ग्वालियर

प्रकाशक :
कि ता ब घ र
हाईकोर्ट रोड, ग्वालियर-१

मूल्य १२ ५०

मुद्रक
आगरा फाइन आर्ट प्रेस,
राजा मण्डी, आगरा-२

प्रारम्भिक

कबीरदास हिन्दी के अत्यन्त विवादास्पद कवि हैं। आलोचको का एक शिविर यदि उन्हें किसी भी प्रकार कवि मानने को प्रस्तुत नहीं है तो दूसरा शिविर उनकी रचनाओं में काव्य की मूल आवश्यकताओ को प्रचुर परिमाण में देखता है। इन दो अतिवादी शिविरों के बीच पड़ जाने से कबीरदास और उनके काव्य को यदि अनेक हानियाँ उठानी पड़ी हैं तो लाभ भी कम नहीं हुए हैं। विवाद के फलस्वरूप कबीरदास के काव्य के विविध पक्षों की ओर इन आलोचकों का ध्यान गया है और अनेक दृष्टिकोणों से कबीर का अध्ययन सम्भव हुआ है। वास्तव में विवाद के धक्को से दुर्बल अथवा सामान्य कवि ही घाटे मे रहता है, जीवत एवं समृद्ध कवि तो प्रत्येक विवाद के बाद और भी श्रेष्ठ और सम्पन्न कवि के रूप में स्थापित होता है। अतः विवाद के वातावरण ने कबीरदास को क्रमशः आलो[illegible] और पाठको के बीच अधिक मूल्यवान और मनस्वी कवि के रूप में ही प्रतिष्ठित किया है। अब आलोचक कबीर को 'बची-खुची कहने' वाले कवि के रूप में उल्लिखित कर चलता नही कर देते वरन् हिन्दी के पहिले प्रतिबद्ध और जनता के कवि के रूप में उनकी अभ्यर्थना निस्संकोच रूप से करते हैं।

कबीर को विद्रोही, क्रान्तिकारी अथवा मूर्तिभंजक कवि कह कर ही आलोचक के दायित्व की इतिश्री नहीं हो जाती। कबीर ने काव्य अथवा जीवन के क्षेत्र में केवल विद्रोह के लिए विद्रोह नहीं किया। परम्परा और रूढ़ियों के बन्धन से विद्रोह के पीछे उनका एक निश्चित जीवनादर्श और काव्य-सिद्धान्त था। वे जनता की बोली में जनता की अनुभूति का बखान करने वाले हिन्दी के पहिले जनकवि थे। वास्तव में उनके काव्य और जीवन में जो अशेष मनस्विता और क्रान्तिकारिता मिलती है उसके पीछे कबीरदास की गहन मानवीय करुणा है। कबीरदास हिन्दी के पहिले कवि हैं जिसने उच्चतर नैतिक मूल्यो के लिये संघर्ष किया और प्रतिष्ठान से किसी प्रकार का समझौता

नहीं किया। यही कारण है कि हिन्दी काव्य में जब-जब जीवन-मूल्यों और काव्यादर्शों के क्षेत्र मे विद्रोह का स्वर सुनाई पड़ा तो वह अपने साथ कबीर के जनवादी, आस्थावान और उदात्त स्वर से मिल गया। हिन्दी काव्य के आधुनिक काल में जिन प्राचीन कवियों को आज के सन्दर्भ में सर्वाधिक सगत माना गया है, कबीर उनमें अनन्य हैं। नयी कविता की अनेक प्रवृत्तियाँ—चाहे वे जीवन-मूल्यो से सम्बद्ध हों, चाहे अभिव्यक्ति-शिल्प से—कबीर के काव्य में बीज रूप मे उपस्थित मिल जाती हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में मैने कबीर को एक विशिष्ट कवि के रूप में ही न देखकर हिन्दी के ऐसे कवियों की परम्परा के आदि कवि के रूप में देखा है जो समानता, समाजवाद और उच्चतर नैतिक मूल्यो की रक्षा के लिये प्रतिबद्ध रहे हैं।

कबीर जटिल कवि हैं, क्लिष्ट कवि नहीं। उनकी जटिलता भी अधिकांशतया उनके मानसिक और सामाजिक परिवेश को न समझने के ही कारण सामने आती है। यदि हम एक बार कबीरदास की मानसिक सरचना, उस पर पड़नेवाले विभिन्न प्रभावों तथा उनके समसामयिक धार्मिक एवं सामाजिक जीवन को समझ लें तो हमें कबीर का काव्य असाधारण रूप से प्रभावशाली और हार्दिक लगने लगेगा। प्रस्तुत पुस्तक में मैने कबीरदास की मानसिक संरचना और उनके सामाजिक परिवेश को संघटित करने का प्रयास किया है।

कबीरदास पर विभिन्न दृष्टिकोणों से अनेकानेक पुस्तकें लिखी गयी हैं। वास्तव मे उनके अध्ययन का अभी आरम्भ ही हुआ है। 'चुनौतियो' के कवि के रूप में कबीरदास को प्रस्तुत करने में मेरा लक्ष्य उन्हें आज के सामान्य नागरिक के लिये संगत और आवश्यक सिद्ध करना रहा है। पुस्तक में पाद-टिप्पणियों, व्याख्यात्मक अंशों और कबीरदास के काव्य में प्रयुक्त विभिन्न वस्तुओं एवं उपकरणो से सम्बद्ध चित्रों को इसीलिये समाविष्ट किया गया है ताकि कबीर और उनका काव्य कविता के गम्भीर और जागरूक पाठकों के लिए किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित न करे।

मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक कबीरदास के अध्येताओ के लिये विचारोत्तेजक और पठनीय सिद्ध होगी।

बंगबधु मुक्ति दिवस
८ जनवरी '७२

—कान्तिकुमार

संकेत

१
कबीरदास का जीवन परिचय

हिन्दी के अन्य प्राचीन कवियो की भाँति कबीरदास के जीवन से सम्बन्धित प्रामाणिक सामग्री का प्राय· अभाव है। कबीरदास ने अपने काव्य मे अपने जीवनवृत्त के सम्बन्ध मे यत्र-तत्र केवल प्रासगिक उल्लेख ही किये हैं। मध्यकाल मे भक्त कवियो के जीवन एव व्यक्तित्व का आलेख करनेवाले अनेक चरितो तथा वार्त्ताओ का भी निर्माण हुआ; किन्तु उनमे कवियो की प्रामाणिक जीवनी के स्थान पर उनके दार्शनिक विचारो और चामत्कारिक घटनाओ का ही सन्निवेश अधिक हुआ है। जनश्रुतियो और किंवदन्तियो के कारण अधिकाश मध्यकालीन कवि ऐतिहासिक व्यक्तियो की अपेक्षा पौराणिक पुरुष अधिक बन गए है। कबीर की जीवनी का आकलन करने मे विद्वानो को बडी कठिनाई का सामना करना पडा है। अन्त·साक्ष्य तथा बर्हिसक्ष्य के आधार पर कबीरदास के जीवन-चरित की केवल स्थूल रूपरेखा ही तैयार की जा सकी है।

जन्म

कबीर की जन्म-तिथि और जन्म-स्थान के सम्बन्ध मे कबीरदास के अध्येताओ मे पर्याप्त मतभेद है। डा० हण्टर ने कबीरदास का जन्म सम्वत् १४३७ तथा पादरी वेस्टकॉट ने सम्वत् १४६७ स्थिर किया है। कबीरदास के प्रधान शिष्य धर्मदास के एक पद्य के अनुसार कबीरदास का जन्म 'चौदह सौ पचपन साल गए' हुआ था। पूरा छन्द इस प्रकार है—

चौदह सौ पचपन साल गए,
चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायेत को,
पूरनमासी तिथि प्रगट भए।।

इस छन्द के अनुसार कबीरदास का जन्म सम्वत् १४५५, ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा सोमवार को मानना चाहिए ; किन्तु विद्वानो ने गणना करके यह सिद्ध किया है कि १४५५ या ५६ मे ऐसी एक भी ज्येष्ठ पूर्णिमा नही थी जिस दिन सोमवार भी हो। डा० पारसनाथ तिवारी का अनुमान है कि "उपर्युक्त छन्द का चन्द्रवार दिन का सूचक नही, बल्कि उसी स्थान का सूचक है जिसका उल्लेख 'निर्भय ज्ञान', 'ज्ञान सागर' तथा 'अनुराग सागर' मे मिलता है।" चन्द्रवार सम्बन्धी विवाद से कुछ भी निष्कर्ष निकाला जाये, डा० श्यामसुन्दरदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० पारसनाथ तिवारी आदि सम्वत् १४५६ ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा को ही कबीर की जन्म-तिथि मानने के पक्ष मे है। कबीर के जन्म के सम्बन्ध मे निम्नलिखित पंक्तियो की भी चर्चा की जाती है—

सम्वत बारह सौ पाँच में, ज्ञानी कियो विचार।
कासी में परगट भयो, सब्द कहो टकसार॥

इस छन्द के अनुसार कबीरदास का जन्म-काल सम्वत् १२०५ होना चाहिए, किन्तु अनेक कारणो से यह प्रामाणिक नही जान पडता।

जन्म-स्थान

कबीर के जन्म-स्थान के सम्बन्ध मे भी निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। ऐसा कहा जाता है कि कबीरदास काशी की एक ब्राह्मण विधवा की सतति थे। लोक-लाज के भय से विधवा ब्राह्मणी ने अपने नवजात शिशु को एक जलाशय के किनारे छोड दिया था। नीरू जुलाहे और उसकी पत्नी नीमा को यह बालक जलाशय के किनारे ही प्राप्त हुआ था। यह जलाशय कहाँ है—इस सम्बन्ध मे अभी तक निश्चय-पूर्वक कुछ भी कहना विद्वानो के लिए सम्भव नही हो पाया है। श्री गुरुग्रन्थ साहब, राग रामकली, पद ३ के अनुसार कबीरदास का जन्म मगहर मे हुआ था, किन्तु श्री गुरुग्रन्थ साहब के ही राग गउड़ी के पन्द्रहवे पद के अनुसार—

सगल जनम सिवपुरी गँवाइआ।
मरती बार मगहर उठि आइआ॥

इससे यह सकेत मिलता है कि कबीरदास 'मरती बार' ही मगहर गये थे। इस मत के विपरीत प्रसिद्ध मैथिली विद्वान् डा० सुभद्र झा कबीरदास को मिथिला मे उत्पन्न हुआ मानते हैं। बनारस ज़िला गजेटियर (१६०८ ई०) के अनुसार कबीरदास का जन्म आज़मगढ जिले के बेलहरा गाँव मे हुआ था। पण्डित चन्द्रबली पाण्डेय का मत है कि यह बेलहरा गाँव उर्फ बेलहर पोखर ही लहर तालाब है जहाँ विधवा ब्राह्मणी ने अपने नवजात शिशु को फेक दिया था ; किन्तु यह मत कई कारणो से

अप्रामाणिक सिद्ध होता है। काशी के कबीर चौरा से उत्तर पश्चिम मे लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित लहर-तारा तालाब कबीर पथियो द्वारा निर्विवाद भाव से कबीर का जन्म स्थान माना जाता है। कबीर के जन्म-स्थान के रूप में लहर तारा का सर्वप्रथम उल्लेख स्वामी परमानन्द दास ने सम्वत् १६६६ विक्रमाब्द में 'कबीर मशूर' नामक ग्रन्थ मे किया है।

ऊपर कबीर के जन्म-काल से सम्बन्धित 'चौदह सौ पचपन साल गए' आदि कुछ पक्तियाँ उद्धृत की गई है। डा० पारसनाथ तिवारी ने इस चन्दवार को 'निर्भय ज्ञान' तथा 'ज्ञान सागर' आदि कबीर पथ के ग्रन्थो मे उल्लिखित चन्द्रवार से अभिन्न माना है; किन्तु यह चन्द्रवार कहाँ है इसका ठीक-ठीक निश्चय नही किया जा सका है। डा० पारसनाथ तिवारी लहर तारा से लगभग तीन किलोमीटर दूर चाँदपुर नामक एक गाँव को कबीरदास के जन्म-स्थान के रूप मे स्वीकार करने के पक्ष मे दिखाई पड़ते है।

बाल्यावस्था

कबीर का बाल्यावस्था सम्बन्धी बृतात भी अधकार मे छिपा है। कहते हैं कि कबीरदास को भूख नही लगती थी। अपने माता-पिता को चिंतित देखकर कबीर ने दूध पीना स्वीकार किया किन्तु यह दूध सामान्य दूध से भिन्न था—"एक अनब्यायी बछिया के नीचे मिट्टी का कोरा बर्तन रख दिया जाता था। कबीर दूध की इच्छा से ज्यो ही उस बछिया की ओर देखते थे, बर्तन लबालब भर जाता था। वही दूध वे नित्य प्रति पिया करते थे।" नीरू-नीमा ने बचपन से ही कबीरदास को बुनकरी के काम मे लगा दिया था किन्तु भक्ति मे तल्लीन हो जाने पर वे अपने अभिभावको के व्यवसाय से उदासीन हो जाया करते थे—

तननां बुननां तज्यौ कबीर। रांम नांम लिखि लियौ सरीर॥
मुसि-मुसि रोवै कबीर की माई। यह बारिक कैसे जीवै खुदाई॥
जब लगि तागा बाहौं बेही। तब लगि बिसरै रांम सनेही॥
कहत कबीर सुनहु मेरी माई। पूरन हारा त्रिभुवन राई॥

कबीरदास के गुरू

सामान्यतया यह स्वीकार किया जाता है कि प्रसिद्ध महात्मा स्वामी रामानन्द जी कबीरदास के गुरू थे। इस मान्यता के समर्थक प्रमाण रूप मे **'काशी में हम प्रगट भए हैं रामानन्द चेताए'** वाक्य उद्धृत करते है; किन्तु यह वाक्य न तो कबीरदास का स्वरचित वाक्य है और न गुरु ग्रन्थ साहिब मे ही इसका उल्लेख मिलता है। **कुछ भी हो,** इसमे सन्देह नही कि लोकमानस मे रामानन्दजी के कबीरदास के गुरू

होने का तथ्य बहुत दृढतापूर्वक स्थापित है । डा० श्यामसुन्दरदास का मत है कि "हो सकता है कि बाल्यकाल मे बारबार रामानन्दजी के साक्षात्कार तथा उपदेश श्रवण से (**गुरू के सबद मेरा मन लागा**) अथवा दूसरो के मुँह से उनके गुण तथा उपदेश सुनने से बालक कबीर के चित्त पर गहरा प्रभाव पड गया हो जिसके कारण उन्होने आगे चलकर अपना मानस गुरू मान लिया हो ।" इस सम्बन्ध मे एक किंवदन्ती यह भी कही जाती है कि मुसलमान परिवार मे लालित-पालित कबीर के वैष्णव जनोचित आचार व्यवहार पर काशी के ब्राह्मणो ने आपत्ति की और कहा कि निगुरे वैष्णव को मुक्ति नही मिला करती । कोई वैष्णव गुरू कबीर को दीक्षा देने के लिये प्रस्तुत नही था अत कबीर ने युक्तिपूर्वक स्वय को स्वामी रामानन्दजी के गुरू-मत्र से दीक्षित कर लिया । कहते है कि रामानन्दजी पच गगा घाट पर नित्यप्रति ब्राह्म मुहूर्त मे स्नान करने जाते थे । एक दिन कबीरदास उस घाट की सीढियो पर लेट रहे । अन्धकार मे स्वामी रामानन्द का पैर कबीरदास के सिर पर पडा । स्वामीजी के मुँह से खेद रूप मे 'राम-राम' निकला । कबीरदास ने इसी राम-राम को गुरू-दीक्षा के रूप मे स्वीकार किया और स्वामी रामानन्द को अपने गुरू के रूप मे विज्ञापित करना प्रारम्भ किया , किन्तु जैसा कि कहा जा चुका है, कबीरदास और रामानन्द के सम्बन्ध मे जो घटनाएँ प्रचलित है वे इतिहास से पुष्ट नही होती । कबीरदास की प्रामाणिक रचनाओ मे रामानन्द का उल्लेख प्राप्त नही है ।

मुसलमान कबीर पथियो मे यह विश्वास प्रचलित है कि कबीरदास ने सूफी फकीर शेख तकी से दोक्षा ली थी । मौलाना गुलाम 'सरवर' ने 'खजीनतुल असफिया, मे लिखा है कि शेख कबीर जुलाहा शेखतकी के उत्तराधिकारी तथा शिष्य थे । डा० श्यामसुन्दरदास शेखतकी को कबीर के गुरू के रूप मे स्वीकार करने मे कठिनाई का अनुभव करते हैं । कबीरदास ने अपने गुरू के बनारस निवासी होने का स्पष्ट उल्लेख किया है । इस कारण कडा मानिकपुर अथवा झाँसी निवासी शेख तकी उनके गुरू नही हो सकते । इन तथ्यो के अतिरिक्त कबीर शेख तकी के प्रति आदरभाव भी रखते नही प्रतीत होते । **"घट घट है अविनासी सुनहु तकी तुम सेख"** मे उन्होने तकी का नाम आदर से नही लिया है । बल्कि वे उल्टे तकी को ही उपदेश देते हुए जान पडते है । यद्यपि यह वाक्य कबीर ग्रन्थावली मे कही नही मिलता, फिर भी स्थान-स्थान पर शेख शब्द का प्रयोग मिलता है जो विशेष आदर से नही लिया गया है । इन प्रसगो मे फटकार की मात्रा ही अधिकतर दीख पडती है । अत तकी कबीर के गुरू हो ही नही सकते । डा० पारसनाथ तिवारी का अनुमान है कि कबीरदास ने जिस शेख तकी का उल्लेख किया है वह किसी सूफी फकीर का प्रतीक जान पडता है ।

शेखतकी के अतिरिक्त पीताम्बर पीर और मति सुन्दर को भी कबीरदास का गुरू बताया गया है ; किन्तु यह मत भी सदिग्ध ही है ।

पारिवारिक जीवन

कहा जाता है कि कबीर विवाहित थे और उनका विवाह-सस्कार लोई के साथ सम्पन्न हुआ था । यह अनुमान किया जाता है कि लोई एक वनखण्डी वैरागी की पोषिता कन्या थी । यह वैरागी एक दिन जब गगा-स्नान के, लिए गये तो उन्होने लोई मे एक कन्या शिशु को बहते देखा । लोई मे लिपटी होने के कारण उन्होने उसका नाम भी लोई ही रख दिया । कालान्तर मे इसी लोई की विवाह कबीर के साथ हुआ । कुछ लोग लोई को कबीर की परिणीता न मानकर उनकी शिष्या मानते है जो आजन्म उनके साथ रही । लोई से कबीर को कमाल नामक पुत्र और कमाली नामक पुत्री हुई थी । कबीर ने लोई को सम्बोधित करके अनेक पद कहे है , किन्तु ये पद कबीर ने अपनी पत्नी लोई को सम्बोधित न कर सम्भवत. लोई अर्थात् 'लोक' को सम्बोधित किये है । निम्न पद मे लोई और कबीर का एक घर होना कहा गया है—

रे यामै क्या मेरा तेरा, लाज न मरहि कहत घर मेरा ।
कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम बिनति रहेगा सोई ।।

कुछ लोगो ने यह अनुमान लगाया है कि लोई पहले कबीर की पत्नी रही होगी जो कबीर के विरक्त होकर नवीन पथ चलाने पर उनकी अनुगामिनी हो गयी ।

कबीर के जीवन के साथ अनेक अतिरजित एव कल्पनातीत घटनाओ का सम्बन्ध जोड़ा जाता है । भक्तगण सम्भवत· श्रद्धेय व्यक्ति को लोकोत्तर क्षमतावान सिद्ध करने के लिए ही ऐसा करते है । कहते है कि कबीरदास के शाहेवक्त सिकन्दर लोदी के दरबार मे यह अभियोग लगाया गया कि कबीरदास अपने आपको ईश्वर कहते है । इस आचरण के लिए काजी ने उनको मृत्युदण्ड की आज्ञा सुनाई । शृङ्ख-लाओ मे आबद्ध कबीर नदी मे फेक दिये गये , किन्तु लोगो के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब वे शृङ्खलामुक्त होकर तैरते हुए नदी किनारे आ खडे हुए । उसी प्रकार धधकते हुए अग्निकुण्ड मे कबीर को जलाने के प्रयास और मस्त हाथी के पैरो से उन्हें कुचलवाने का उद्यम भी व्यर्थ हुआ । इन घटनाओ का उल्लेख कबीरदास के पदो मे तो मिलता ही है—भक्त माल के टीकाकार प्रियादास तथा दादू के शिष्य रज्जबदास द्वारा भी इनकी चर्चा की गयी है ।

कबीर की जाति और धर्म

कबीर हिन्दू थे या मुसलमान, यह निर्णय करना सहज नही है । कुछ लोग उन्हे बौद्ध मतावलम्बी मानते है । कबीरदास हिन्दू हो, मुसलमान हो या बौद्ध हो किन्तु वे जुलाहा अथवा कोरी थे इसमे सन्देह नही है । कबीरदास ने अपनी रचनाओ मे अपने आपको गर्वपूर्वक जुलाहा कहा है—

(१) तूं बाम्हन मैं कासी का जुलाहा।
(२) हरि के नाउ बिन किन गति पाई।
कहै जुलाह कबीरा।
(३) जैसे जल जलही ढुरि मिलियौ।
त्यौं ढुरि मिला जुलाहा।

उन्होने अपने आपको कोरी भी कहा है—

हरि को नाम अभै पददाता, कहै कबीरा कोरी।

ये सारी पक्तियाँ कबीरदास की प्रामाणिक पक्तियाँ है। गुरू अमरदास, अनन्त-दास, रज्जब आदि ने भी कबीर को जुलाहा ही माना है। मुसलमान लेखको के अनुसार वे 'जुलाहानज्राद'(जुलाहा कुलोत्पन्न) थे। कबीरदास की रचनाओ मे अनेक स्थानो पर यदि मुस्लिम सस्कारो का वर्णन उपलब्ध होता है तो ऐसे स्थान भी कम नही है जो हिन्दू सस्कारो के वर्णनो से परिपूर्ण हो। उन्होने हिन्दू और मुसलमान दोनो के जन्म और मृत्युसस्कारो का समान भाव से उल्लेख किया है। इसी प्रकार से जन्मान्तर-वाद और कर्मवाद आदि हिन्दू सिद्धान्तो के साथ मुस्लिम एकेश्वरवाद का भी इन रचनाओ मे निरन्तर उल्लेख हुआ है। अतः इन वर्णनो के आधार पर कबीरदास को हिन्दू या मुसलमान सिद्ध करना समीचीन नही है। डा० पारसनाथ तिवारी के शब्दो मे "वस्तुतः भारत और अरब का सम्बन्ध बहुत पुराना है; अतः भारत मे मुसल-मानो के आगमन से बहुत पूर्व ही दोनो देशो की विचारधाराएँ एक-दूसरे को प्रभा-वित करती रही। मुसलमानो के आगमन के पश्चात् तो विचारधाराओ का और भी अधिक आदान-प्रदान हुआ जिससे दोनो सस्कृतियो की समान मान्यताओ का उल्लेख हिन्दू तथा मुस्लिम दोनो प्रकार के रचनाकारो मे समान रूप से मिल सकता है। अतः इस तर्क के आधार पर किसी कवि की जाति का निर्णय करना समीचीन नही कहा जा सकता।" आचार्य क्षितिमोहन सेन और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कबीर-दास को योगियो के किसी ऐसे वर्ग से सम्बद्ध मानते है जिन्होने थोडे समय पूर्व इस्लाम धर्म ग्रहण किया था और जिनके परिवारों मे हिन्दू तथा मुस्लिम दोनो प्रकार के रीति-रस्म माने जाते थे। डा० बडथ्वाल भी कबीर को योगियो का अनुयायी मानते हैं—"मेरी समझ से कबीर भी किसी प्राचीनतया कोरी किन्तु जुलाहा कुल के थे जो मुसलमान होने से पहले योगियो का अनुयायी था।" डा० विद्यावती मालविका ने 'हिन्दी साहित्य पर बौद्ध प्रभाव' नामक शोध प्रबन्ध मे कबीरदास को कोली राजपूतो का वंशज माना है। इस कोली राजपूत वंश मे गौतम बुद्ध की माँ महामाया जैसी महिमामयी स्त्रियाँ हो चुकी है। इस जाति का मुख्य उद्यम कृषि करना और वस्त्र

बुनना था। मुसलमानो के आक्रमण काल मे कोली राजपूत जो बौद्ध बन गये थे मुसलमान हो गये। कबीर इसी कोलीय या कोरी जाति से सम्बद्ध थे। यही कारण है कि कबीर की रचनाओ मे हिन्दू, बौद्ध और इस्लाम धर्मों की विचारधारा के अनेक तत्व उपस्थित हैं।

निधन

कबीरदास के जन्म की भाँति उनकी मृत्यु-तिथि के सम्बद्ध मे भी वाद-विवाद है। कबीर पंथी साहित्य मे कबीर के मृत्यु-सम्बत् के सम्बन्ध मे चार दोहे प्रचलित हैं—

(१) संवत पंद्रह सौ पचहत्तरा, किया मगहर को गौन।
माघ सुदी एकादसी, रलो पौन में पौन॥
(२) पद्रह सौ औ पाँच में, मगहर कीन्हो गौन।
अगहन सुदि एकादसी, मिल्यो पौन में पौन॥
(३) पंद्रह सौ उनचास में, मगहर कीन्हो गौन।
अगहन सुदि एकादसी, मिल्यो पौन में पौन॥
(४) संवत पंद्रह सौ उनहतरा रहाई।
सतगुरू चले उड़ि हंसा ज्याई॥

इनमे से कोई भी दोहा पूर्णतः प्रामाणिक सिद्ध नही होता। पहले दोहे के तीसरे चरण मे कही-कही 'माघ सुदी एकादशी' के स्थान पर 'अगहन सुदि एकादशी' पाठ भी मिलता है। ये सभी रचनाएँ मौखिक परम्परा मे ही प्रचलित है। इन मतो के अतिरिक्त सन्त काव्य के प्रसिद्ध विद्वान डा० परशुराम चतुर्वेदी ने सम्वत् १५५२ और सोलहवी शताब्दी के प्रथम चरण को भी कबीरदास के निधन-काल का निर्णय करते समय विवेच्य माना है। कबीर पथ मे कबीरदास की आयु १२० वर्ष स्वीकार की गई है। इस प्रकार १४५५ या ५६ में जन्म लेनेवाले और १२० वर्ष की आयु भोगनेवाले कबीरदास का मृत्यु-काल सम्वत् १५७५ सिद्ध होता है। विद्वानो ने इस तिथि को सामान्यतया स्वीकार किया है। इस तिथि को स्वीकार कर लेने पर सिकन्दर लोदी, गुरू नानक और रामानन्द आदि से कबीरदास की समसामयिकता का मेल भी बैठ जाता है। आचार्य क्षितिमोहन सेन, डा० पीताम्बर दत्त बडथवाल और आचार्य परशुराम चतुर्वेदी सम्वत् १५७५ के स्थान पर सम्वत् १५०५ को कबीरदास की निधन-तिथि मानना अधिक समीचीन समझते है। कतिपय विद्वानो ने पहले दोहे के सम्वत् पन्द्रह सौ पचहत्तरा का अर्थ १५०५ ही किया है; किन्तु यदि कबीरदास की मृत्यु सम्वत् १५०५ मे स्वीकार कर ली जाये तो सम्वत् १४५५ मे जन्म

लेनेवाले कबीरदास का जीवनकाल केवल ५० वर्षो का ही सिद्ध होता है। कबीरदास के जो चित्र प्राप्त हुए हैं वे ५० वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति के है। ऐसी स्थिति मे या तो कबीरदास का जन्मकाल सम्वत् १४५५ के पहले ले जाना होगा या उनकी मृत्यु सम्वत् १५०५ के उपरान्त ही स्वीकार करनी होगी। सम्वत् १४५५ को विद्वानो ने गम्भीर चिन्तन के उपरान्त कबीरदास की जन्म-तिथि के रूप मे निश्चयात्मक रूप से स्वीकार कर लिया है। अतः उचित यही होगा कि कबीरदास की निधन-तिथि सम्वत् १५७५ ही मानी जाए।

धनदास के तथारचित ग्रन्थ 'द्वादश पन्थ' के आधार पर डा० माता प्रसाद गुप्त ने सम्वत् १५६६ को कबीरदास की निर्वाण-तिथि माना है। उनकी यह मान्यता इन पक्तियो के आधार पर स्थित है—

सुमंत पन्द्र सौ उन्हत्तरा हाई।
सतगुरू चले उठ हंसा ज्याई॥

किन्तु यह छन्द न तो प्रामाणिक है और न ही 'उठ हंसा ज्याई' से कबीर के निर्वाण का बोध होता है। कही-कही 'उठ हसा ज्याई' 'उडीसा जावे' के रूप मे मिलता है। ऐसी स्थिति मे अद्यावधि प्राप्त प्रमाणो के आधार पर सम्वत् १५७५ ही कबीरदास की निधन-तिथि के रूप मे स्वीकार्य है।

अन्तिम संस्कार

जन्म और निधन के ही समान कबीरदास का मृत्यु-सस्कार भी विवादग्रस्त है। कबीरदास की अन्त्येष्टि क्रिया के सम्बन्ध में एक बहुत ही विलक्षण विवाद प्रचलित है। डा० श्यामसुन्दरदास के शब्दो में "कहते हैं कि हिन्दू उनके शव का अग्नि सस्कार करना चाहते थे और मुसलमान उसे कब्र मे गाढना चाहते थे। झगडा यहाँ तक बढा कि तलवारे चलने की नौबत आ गयी ; पर हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के प्रयासी कबीर की आत्मा यह बात कब सहन कर सकती थी। उस आत्मा ने आकाशवाणी की 'लडो मत ! कफन उठाकर देखो।' लोगो ने कफन उठाकर देखा तो शव के स्थान पर एक पुष्पराशि पायी गयी जिसको हिन्दू-मुसलमान दोनो ने आधा-आधा बाँट लिया। अपने हिस्से के फूलो को हिन्दुओ ने जलाया और उनकी राख को काशी ले जाकर समाधिस्थ किया। वह स्थान अब तक कबीर चौरा के नाम से प्रसिद्ध है। अपने हिस्से के फूलो के ऊपर मुसलमानो ने मगहर ही मे कब्र बनाई।" विद्वानो ने यह भी बताया है कि कबीर की कब्र मगहर मे नही बल्कि अयोध्या के

७

कबीरदास पर पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव

कबीर के काव्य पर उनके पूर्ववर्त्ती अनेक कवियो की छाप स्पष्ट दिखाई पडती है। कबीरदास की एक साखी है :—

मन लागा उन्मन्न सौं, उन मुनि मनहिं बिलगि।
लौंन बिलंगा पांनियां, पानीं लौंन बिलंगि॥

इसके भाव बृहदारण्यक उपनिषद् की इस पक्ति से मिलते है :—

स यथा सैन्धव खिल्य उदके प्राप्त उदक मेवानुयलीय ते।

एक अन्य साखी तैत्तरीय उपनिषद् की पक्तियो से समता रखती है

कबीर—

आंगन बेलि आकास फल, अन ब्यावर का दूध।
ससा सींग कीं धनुहड़ी, रमै बांझ का पूत॥

तैत्तरीय उपनिषद्—

मृग तृष्णाम्भसि स्नातः ख पुष्प कृत शेखरः।
एष बन्ध्या सुतो याति शश श्रृंग धनुर्धरः।

नाथो और सिद्धो की बानियो का तो कबीरदास पर प्रभूत प्रभाव है। नाथ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हठयोग प्रदीपिका' मे कहा गया है .—

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चाऽपरे।
समतत्वं न जानन्ति द्वैताद्वैत विलक्षणम्।

कबीर ने इस भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है :—

एक कहौ तो है नहीं, दोई कहौं तौं गारि ।
हरि जैसा तैसा रहै, कहै कबीर बिचारि ।

नवी शताब्दी बिक्रमाब्द के कवि सिद्ध सरहपा का एक दोहा है :—

जहि मण पवण ण सञ्चरइ, रवि ससि णाह पवेस ।
तहि बढ़ चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उएस ।

और कबीर की साखी है .—

जिहि बन सीह न संचरै, पंषि उड़ै नहीं जाइ ।
रैनि दिवस का गमि नहीं, तहाँ कबीर रह्या ल्यौ लाइ ।

सरहपा की अन्य उक्ति है :—

पंडित सअल सत्य बक्खाणइ ।
देहहि बुद्ध वसन्त न जाणइ ।

कबीरदास ने इसी भाव को अपने एक पद मे इस प्रकार व्यक्त किया है .—

पढ़ि-पढ़ि पडित वेद बखाणै ।
भीतरि हूती बसत न जाणै ॥

इसी प्रकार सिद्ध शबरपा, सिद्ध भुसुकपा, सिद्ध कण्हपा, सिद्ध ततिपा, सिद्ध ढेण्ढणपा आदि सिद्धो के चर्यापदो से कबीर की कतिपय साखियो की अद्‌भुत समता है । कबीर की कुछ उलटबाँसियाँ तो ढेण्ढणपा का अक्षरश अनुवाद जान पडती है । ढेण्ढणपा कहते है :—

वलद विआअल गविआ बाँझे ।
पिटा दुहिए ए तिना साँझे ॥

और कबीरदास का पद है —

बैल बिआइ गाइ भई बाँझ ।
बछरा दूहैं तीन्यूं साँझ ॥

डा० परशुराम चतुर्वेदी का मत है कि "कबीर साहब की रचनाओ के अन्तर्गत बहुत से सिद्धो के दोहे अथवा उनके चर्यापदो मे आये हुए वाक्याशो तथा मुहावरो के भी अनुवाद प्राय: ज्यो के त्यो मिलते है ।" कबीरदास नाथो से भी प्रभावित है । गोरखबानी

की अनेक पंक्तियाँ कबीरदास के काव्य से अद्‌भुत साम्य रखती हैं। यहाँ यह कहना आवश्यक जान पड़ता है कि गोरखनाथ के काव्य मे जो वर्ण्य सैद्धान्तिक विवरण बनकर उपस्थित हुआ है वह कबीर के काव्य मे अनुभूति गत उल्लेख लगता है। कबीर ने चौगान के खेल, घुडसवारी, माया की बेल के चतुर्दिक फैलने, मृगया आदि के रूपक प्रायः गुरू गोरखनाथ की बानियो के आधार पर बाँधे हैं। कबीरदास गोरखनाथ के प्रति श्रद्धा का भाव रखते है। अतएव उनकी वाणी से कबीरदास का परिचित होना और उनका पारायण करना कबीरदास के लिये सहज रहा होगा।

कबीरदास जैनो और बौद्धो के काव्यो से भी प्रभावित है। जैन मुनि रामसिंह (ग्यारहवी शताब्दी विक्रमाब्द), जैन मुनि योगीन्दु (११वी शताब्दी विक्रमाब्द), जैन कवि सोम प्रभुसूरि (१३वी शताब्दी विक्रमाब्द) आदि की रचनाओ का भावान्तरण कबीरदास के काव्य मे उपलब्ध है। पन्द्रहवी शताब्दी विक्रमाब्द के ग्रन्थ 'ढोला मारू रा दोहा' के अनेक दोहे कबीरदास की साखियो से अद्‌भुत साम्य रखते है। कुछ दोहो की तुलना रोचक और उपयोगी सिद्ध होगी :—

ढोला—**राति जु सारस कुरलिया, गुंजि रहे सब ताल।**
जिणकी जोडी बीछड़ी, तिणका कवण हवाल।

कबीर—**अंबर, कुंजां कुरलियाँ, गरज भरे सब ताल।**
जिन पै गोविंद बीछुरै, तिनके कौन हवाल।

ढोला—**यह तन जारि मसि करूँ, धूँआ जाइ सरग्गि।**
मुझ प्रिय बद्दल होइ करि, बरसि बुझावइ अग्गि।

कबीर—**यह तन जारौ मसि करें करूँ ज्यूँ धूँआ जाइ सरग्गि।**
मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै अग्गि।

कबीरदास की कतिपय पक्तियाँ सन्त जयदेव, नामदेव आदि की पक्तियो से भी साम्य रखती है।

मध्यकालीन सन्तो का अपने पूर्ववर्त्ती कवियो से ऋण लेना एक सामान्य बात है। तुलसी जैसे महाकवि ने अपने प्राचीन कवियो से भाव और वाक्य अनेक स्थलो पर ज्यो के त्यो ग्रहण कर लिये है। सन्त साहित्य की कोई लिखित परम्परा न होने के कारण हो सकता है कबीर के शिष्यो और अनुयायियो ने पूर्ववर्त्ती कवियो के विदग्ध पदो को कबीर के नाम से प्रचलित कर दिया हो। इस सम्बन्ध मे डा० परशुराम चतुर्वेदी का मत है कि "कबीर साहब की देशाटन एव सत्सग मे बडी रुचि थी और वे एक विलक्षण सारग्राही पुरुष भी थे। इस कारण उनके लिए सुन्दर और महत्त्वपूर्ण पक्तियो को मौखिक रूप मे ग्रहण कर लेना कठिन नही था।"

८

कबीरदास की भाषा

हिन्दी के मध्यकालीन कवियो मे कबीरदास की भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध मे जितना मतभेद है उतना किसी अन्य कवि की भाषा के सम्बन्ध मे नही। इसका सर्वप्रमुख कारण यह है कि कबीरदास की रचनाओ का प्रामाणिक पाठ उपलब्ध नही है। स्वय साक्षर न होने के कारण उनके लिए स्वय अपनी रचनाओ को लिपिबद्ध करना सम्भव नही था। ऐसी प्रतियो का भी प्रायः अभाव है जो कबीरदास के जीवनकाल मे ही लिपिबद्ध कर ली गई हो। कबीरदास की रचनाओ के विभिन्न सस्करण विभिन्न स्थानो मे विभिन्न कालो मे विभिन्न व्यक्तियो द्वारा तैयार किये गये। ऐसी स्थिति मे भाषा के प्रामाणिक स्वरूप का सधान लगभग असम्भव है। कबीरदास की भाषा पर अनेक प्रभाव परिलक्षित होते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीरदास की साखियो की भाषा को 'सधुक्कडी' कहा है। सधुक्कडी से उनका आशय राजस्थानी, पजाबी और खडी बोली के मिश्रण से है। आचार्य शुक्ल के मतानुसार कबीरदास की रमैनियो और पदो की भाषा किंचित् भिन्न है। वह भी एक प्रकार की मिश्रित भाषा है किन्तु उसमे ब्रज भाषा और पूर्वी बोली का मिश्रण निष्पन्न हुआ है। डा० श्यामसुन्दरदास भी आचार्य शुक्ल की तरह कबीरदास की भाषा को मिश्रित काव्य-भाषा मानते हैं। उनके शब्दो मे वह 'खिचडी' है। इस खिचडी मे अवधी और बिहारी भाषाओ के साथ-साथ खडी बोली, ब्रज, पजाबी, राजस्थानी आदि अनेक भाषाओ के तत्त्व उपस्थित हैं। डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या भी कबीरदास की भाषा में विशुद्धता की स्थिति स्वीकार नही करते और उसमे ब्रज के साथ भोजपुरी का मिश्रण स्वीकार करते है। इसमे कोई सदेह नही है कि कबीरदास की मातृभाषा भोजपुरी थी; किन्तु अपने युग के सामान्य फैशन की तरह ब्रज और अवधी के प्रयोग सहज ही कबीरदास की रचनाओ मे सम्मिलित हो गये। डा० रामकुमार वर्मा कबीरदास की भाषा को पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी और पजाबी के मिश्रण से निर्मित हुआ मानते है। डा० परशुराम चतुर्वेदी कबीरदास

की रचनाओ मे एकाधिक बोलियों की स्थिति स्वीकार करते हैं किन्तु उसका मूलाधार क्या है इस सम्बन्ध मे स्पष्ट रूप से कुछ भी नही कहते। उपर्युक्त विद्वानो के विपरीत ऐसे विद्वान् भी है जो कबीरदास के काव्य को विशुद्धतया किसी एक ही बोली या भाषा मे रचित हुआ मानते है। डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार कबीरदास अवधी के कवि है। राजस्थानी विद्वान् सूर्यकरण पारीख के अनुसार वे राजस्थानी कवि हैं और डा० उदय नारायण तिवारी के अनुसार कबीरदास की भाषा की मूल प्रकृति भोजपुरी की है। इसी प्रकार मैथिली भाषा और साहित्य के अध्येता डा० सुभद्र झा कबीरदास को मैथिली कवि स्वीकार करना उचित समझते है। निश्चय ही इस कोटि के विद्वानो के मत निर्विवाद और वैज्ञानिक नही हैं।

कबीरदास की काव्य भाषा के सम्बन्ध मे वस्तुतः किसी निर्णय तक पहुँचना सम्भव नही है। इसका कारण, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कबीरदास की रचनाओ के प्रामाणिक सस्करण का अभाव है। कबीरदास की रचनाओ के प्रामाणिक पाठ-निर्धारण की ओर शोधकर्त्ताओ का ध्यान आकृष्ट हुआ है। इस सदर्भ मे डा० पारस-नाथ तिवारी का शोधकार्य उल्लेखनीय है। उन्होने कबीरदास की रचनाओ की समस्त उपलब्ध पाण्डुलिपियो और मुद्रित पुस्तको के पाठो का तुलनात्मक अध्ययन कर सन् १९५६ ई० में इलाहबाद विश्वविद्यालय से शोध उपाधि प्राप्त की है और अपने सधान के फलस्वरूप कबीरदास के दो सौ पदो, बीस रमैनियो और सात सौ चालीस साखियो की प्रामाणिकता असदिग्ध मानी है। इस प्रामाणिक पाठ के आधार पर कतिपय विद्वान् कबीरदास की काव्य-भाषा के वस्तुपरक अध्ययन की ओर प्रवृत हुए है। वस्तुतः इस प्रकार के अध्ययनो द्वारा कवि की भाषा के सम्बन्ध मे प्रचलित पूर्वाग्रहो का निराकरण हो जाता है और वैज्ञानिक निर्णय तक पहुँचने मे सुविधा होती है। डा० माता-बदल जायसवाल की 'कबीर की भाषा', डा० भगवत प्रसाद दुबे का 'कबीर काव्य का भाषा शास्त्रीय अध्ययन' और डा० महेन्द्र का 'कबीर की भाषा' नामक शोध प्रबन्ध इस दिशा मे महत्वपूर्ण है। इन शोधकर्त्ताओ ने वस्तुपरक अध्ययन के आधार पर जो निर्णय प्राप्त किये है, सक्षेप मे उनका सार निम्नलिखित है :—

(१) कबीरदास की काव्य भाषा मे संज्ञा तथा विशेषण रूप अधिकाशतया आकारान्त हैं। 'पियारो' (ब्रज) अथवा 'पियार' (अवधी, भोज) की तुलना मे 'पियारा' (खडी बोली) कबीरदास की रचनाओ मे अधिक बार प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार अकेला, झूठा, भला ऐसा आदि शब्द भी कबीरदास की रचनाओ मे बहुलता से प्रयुक्त हुए हैं। ये सब शब्द रूप खडी बोली के हैं। इन शब्द रूपो के आधार पर कहा जा सकता है कि कबीरदास की काव्य-भाषा का स्वरूप मूलत· खड़ी बोली का है।

(२) किसी भी भाषा के स्वरूप के निर्धारण मे सज्ञा अथवा विशेषण की अपेक्षा परसर्ग के रूप अधिक महत्त्वपूर्ण होते है। कबीरदास की रचनाओ मे खड़ी बोली के

परसर्गों का जितनी बहुलता से प्रयोग हुआ है उतना अवधी, भोजपुरी अथवा ब्रज के परसर्ग रूपो का नही । यह भी इस बात का द्योतक है कि कबीरदास की काव्य-भाषा का मूलाधार खडी बोली है ।

(३) परसर्गों की भाँति सहायक क्रिया के रूप भी बहुलाश मे खडी बोली के है । डा० पारसनाथ तिवारी ने डा० माताबदल जायसवाल द्वारा सकलित उदाहरणो के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि कबीर ग्रन्थावली मे खडी बोली, ब्रज, अवधी तथा भोजपुरी के क्रिया रूपो का अनुपात १५० : ३० : १३ : ५ है । अत. उसमे खडी बोली रूपो की प्रधानता स्वत. सिद्ध है ।

(४) कबीरदास ने अपनी रचनाओ मे नि.सकोच भाव से क्रियाओ के कर्मणि प्रयोग किये है । पूर्वी हिन्दी की भाषाओ मे क्रियाओ के कर्मणि प्रयोग नही मिलते जबकि वे पश्चिमी हिन्दी की एक प्रमुख विशेषता हैं ।

ऊपर के मन्तव्यो के आधार पर डा० जायसवाल कबीर की काव्य-भाषा का मूलाधार खडी बोली को मानते है । वे यह तो स्वीकार करते है कि कबीर की काव्य-भाषा मे ब्रजभाषा का भी पुट है , किन्तु कबीरदास की काव्य-भाषा मे भोजपुरी के प्रभाव की पूर्ण उपेक्षा करना सम्भव नही जान पडता । डा० पारसनाथ तिवारी ने कबीरदास की काव्य-भाषा को हिन्दुई या हिन्दवी कहना अधिक समीचीन माना है। यह हिन्दुई या हिन्दवी पश्चिमी अपभ्र श का विकसित रूप थी और एक प्रकार से यह उस समय की अन्त प्रान्तीय व्यवहार की भाषा थी ।

डा० माताबदल जायसवाल के विपरीत डा० भगवत प्रसाद दुबे ने भी डा० पारसनाथ तिवारी द्वारा सम्पादित कबीर ग्रन्थावली को अपने अध्ययन का आधार बनाया है , किन्तु उनके निष्कर्ष डा० जायसवाल के निष्कर्षो से किंचित् भिन्न है । डा० दुवे ने विभिन्न सारणियो के माध्यम से कबीरदास की काव्य-भाषा के मूल रूप तक पहुँचने का प्रयास किया है । उनका निष्कर्ष है कि कबीरदास की काव्य-भाषा मे ब्रजभाषा की प्रयोगावृत्तियाँ सर्वाधिक है ; किन्तु कबीरदास की काव्य-भाषा मे खडी बोली और भोजपुरी के रूपो का प्रभाव भी कम नही है । इस प्रकार डा० भगवत प्रसाद दुवे का निष्कर्ष भी किसी अन्तिम मत की स्थापना मे सहायक नही हो पाता ।

दिल्ली विश्वविद्यालय के डा० महेन्द्र ने भी कबीर की भाषा को अपने शोध का विषय बनाया है और उनका निष्कर्ष है कि "कबीर को किसी एक भाषा का कवि अथवा कबीर ग्रन्थावली की भाषा को कोई एक बोली स्वीकार करना वैज्ञानिक नही । कबीर की भाषा को अवधी, ब्रज और खड़ी बोली—इन तीनो भाषाओ का मिश्रण मानना ही अधिक न्यायसगत तथा वैज्ञानिक होगा । इन तीनो के मिश्रित रूप के साथ राजस्थानी, भोजपुरी तथा पजाबी के रूपो का सहायक रूप मे प्रयोग हुआ है ।"

आश्चर्य की बात है कि एक ही प्रामाणिक पाठ के आधार पर तीन विद्वान्

तीन विभिन्न निष्कर्षों तक पहुँचे हैं। या तो इस प्रकार के अध्ययन की पद्धति त्रुटिपूर्ण हो गई है या कबीर की भाषा वास्तव मे टेढी खीर है। कबीर की भाषा का केवल वस्तुपरक अध्ययन ही पर्याप्त नही है। कबीर की काव्य-भाषा के कलात्मक अध्ययन का भी विशेष महत्त्व है। कबीर ने शब्दो को जानबूझकर तोड़-मरोडा नही है। वास्तव में वे जनकलाकार थे और जनता की भाषा मे जनता को समझाने का उपक्रम कर रहे थे। कबीर के समय तक हिन्दी की बोलियो का पर्याप्त विकास नही हो पाया था और उसमे अपभ्र श के अनेक तत्त्व अभी भी उपस्थित थे। वास्तव मे कबीरदास जिस भाषा का प्रयोग कर रहे थे वह विशुद्ध काव्य-भाषा न होकर व्यावहारिक काव्य-भाषा थी। कबीर को अपने क्षेत्र मे जो भाषा प्रचलित मिली उन्होने उसका वैसा ही प्रयोग किया है। उन्होने विदेशी भाषा के शब्दो को स्वीकार किया है किन्तु उसे भोजपुरी की प्रकृति में ढाल लिया है। कबीर की भाषा कबीर के व्यक्तित्व की भाँति दुर्द्धर्ष, प्रखर, ओजस्वी, और एकदम ताजी है। जो कवि अनुभूति प्रवण होता है वह भाषा की ओर बहुत ध्यान दे नही पाता। कबीर ही नही, माखनलाल चतुर्वेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', गजानन माधव मुक्तिबोध इसके अन्य उदाहरण हैं। कलाकार अपनी भाषा मे पच्चीकारी का विशेष ध्यान रखते है। प्राचीन कवियो मे केशव और आधुनिक कवियो मे पत भाषा के पच्चीकार हैं। कुछ कवि कवि भी होते हैं और उनमे कलाकार की भी अपूर्व क्षमता होती है। तुलसी ऐसे कवियो के उदाहरण हैं किन्तु जो विशुद्धतया अनुभूतिशील कवि होते हैं उनकी भाषा प्राय: अनगढ और खुरदुरी होती है। कबीर के सर्जक मे कलाकार का अश बिल्कुल नही था। वे विशुद्धतया कवि थे, इसीलिए उनकी भाषा अत्यन्त खुरदुरी होते हुए भी अत्यन्त जीवन्त है। वे अनौपचारिक अनुभूतियो को अनौपचारिक भाषा में व्यक्त करनेवाले कवि हैं। उनकी काव्य-भाषा की व्यंजना बिलकुल सटीक और लक्ष्यभेदी होती है।

१

कबीरदास द्वारा प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली

कबीरदास का काव्य सामान्य पाठक को प्राय: दुर्बोध और क्लिष्ट प्रतीत होता है। इसका एक कारण तो शब्दो के ऐसे रूपो का प्रयोग है जो अपभ्रश से हिन्दी मे अभी-अभी आये थे और जिनका स्वरूप हिन्दी मे स्थिर नही हो पाया था। कबीर ने एक ही शब्द को भिन्न-भिन्न रूपो मे प्रयुक्त किया है। हो सकता है कि कबीर की रचनाओ के विभिन्न सस्करणकर्त्ताओ के कारण ऐसा हुआ हो; पर दूसरा अधिक महत्त्वपूर्ण कारण है कबीरदास द्वारा अपने काव्य मे पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग। सत साहित्य मे नाथो और सिद्धो के प्रभाव से अनेक पारिभाषिक शब्द स्वीकार कर लिये गये। साथ मे अपनी विशिष्ट आवश्यकता के आग्रह के कारण कबीर ने कुछ पारिभाषिक शब्द या तो स्वय प्रयुक्त किये या परम्पराग्रहीत पारिभाषिक शब्दो को नया अर्थ दिया। कबीर के काव्य मे पूर्वी क्षेत्र के जनपदीय जीवन मे व्यवहृत औद्योगिक एव व्यावसायिक उपकरणो का भी कम प्रयोग नही हुआ है। जुलाहा, बढई, लुहार, सिकलीगर, धोबी, किसान आदि अपने विशिष्ट क्षेत्र मे जिन उपकरणो का उपयोग करते हैं कबीर ने अपने प्रतीको और उपमानो के लिए उनका उदारतापूर्वक प्रयोग किया है। जब तक कबीर द्वारा प्रयुक्त इन पारिभाषिक एवं जनपदीय शब्दो को न समझ लिया जाये तब तक उनके काव्य का वास्तविक मर्म हृदयगम नही किया जा सकता। यहाँ कबीर-साहित्य के कतिपय ऐसे शब्दो की व्याख्या की गयी है।

अजपा जाप—जप का वह प्रकार जो नामोच्चारण, कीर्त्तन, माला फेरना आदि स्थूल साधनो के बिना मौन भाव से सम्पन्न किया जाये। नाथ पथियो ने जीव द्वारा

२४ घंटों में २१,६०० आने-जानेवाली श्वास को ही अजपा जाप कहा है। गोरखनाथ के शब्दो में—

> इकबीस सहस्रं षटसा आदू पवन पुरिष जप माली।
> इलाप्यंगुला सुषमन नारी अहनिसि ब्है प्रनाली।

कबीर के अनुसार हमारी एक श्वास ओहं है और दूसरी सोह। आने-जानेवाली इन साँसो के जप को कबीर ने 'अजपा माँहै जाप' कहा है। इसे कभी-कभी 'सहज जाप' भी कहा गया है।

अनहद—सस्कृत अनाहत शब्द का ध्वनि परिवर्तित रूप। ससार की समस्त दो वस्तुओ के आघात से ध्वनि उत्पन्न होती है। अनहद या अनहद नाद के सम्बन्ध मे योगियो की मान्यता है कि यह विचित्र ध्वनि साधक के शरीर मे अपने आप बिना सघात के उत्पन्न होती है। समाधि की अवस्था मे योगी इस ध्वनि का श्रवण करता है। योगियो की मान्यता है कि ब्रह्मांड मे जो व्यापक ध्वनि व्याप्त है अनहद नाद पिण्ड मे उसी का प्रतिनिधित्व करता है। यह नाद केवल उसी को सुनायी पडता है जिसकी कुण्डलिनी जाग्रत होती है और जिनकी प्राणवायु सुषम्ना मे प्रविष्ट हो जाती है। यह कुण्डलिनी जब षट्चक्रो का भेदनकर सहस्रार मे स्थित हो जाती है तो प्राण एव मन का नाद में लय हो जाता है और 'नादासक्त चित्त मे फिर किसी विषय की आकाक्षा नही रह जाती'।

कबीरदास ने अनहद नाद को जगत् गुरु की 'कीगरी' तथा 'हरि की कथा' भी कहा है। (दे० नाद)

अमृत—इसे महारस या अमरवारुणी भी कहा गया है। खेचरी मुद्रा में साधक जिह्वा को उलट कर कपाल गह्वर मे प्रविष्ट कराता है और इस प्रकार सहस्रार कमल के मूल में स्थित योनि नामक त्रिकोणाकार शक्ति केन्द्र या चन्द्र स्थान से निरन्तर झरनेवाले अमृत का पान करता है। हठयोग मे यह धारणा व्यक्त की गयी है कि चन्द्रमा से झरनेवाले अमृत का पान करनेवाला योगी जरा और मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है। कबीर के काव्य मे बारम्बार जिस अमृत या रस का उल्लेख हुआ है वह यही अमृत रस है। कबीर ने 'राम रसायन' भी इसी को कहा है।

अरध-उरध—हठयोग की साधना मे मेरुदण्ड के अधो भाग मे जिस मूलाधार चक्र की और ऊर्ध्व भाग मे जिस सहस्रार चक्र की कल्पना की गयी है उसी को कबीर 'अरध-उरध' के रूप मे सकेतित कर रहे हैं। योगी अरध और उरध के भेद को मिटाने की साधना करते हैं। जब अधोभाग स्थित कुण्डलिनी जाग्रत होकर ऊर्ध्व भाग स्थित सहस्रार मे स्थित हो जाती थी तभी योगी की साधना सफल होती थी।

इंगला पिंगला—मेरुदण्ड मे सुषुम्ना के दोनों पार्श्वों में इगला पिंगला की स्थिति मानी गयी है। इंगला का वास्तविक नाम इडा है। पिंगला से अनुप्रास बैठाने के लिए सतो ने इसे इगला बना दिया है। सुषुम्ना की बायी ओर इडा है, दाहिनी ओर पिंगला। इडा को सूर्यनाडी कहते है और पिंगला को चन्द्रनाडी।

उन्मनी—हठयोग की खेचरी आदि ५ मुद्राओ मे से एक। उन्मनी मुद्रा मे दृष्टि को नाक की नोक पर केन्द्रित करते है और भौहो को ऊपर चढाते है। कबीर ने उन्मनी का उदासीन, अन्यमनस्क आदि अर्थो मे भी प्रयोग किया है। योग-साधना सम्बन्धी ग्रन्थो मे 'उन्मनी' के लिए 'मनोन्मनी' शब्द का भी प्रयोग किया गया है जो समाधि का पर्यायवाची है। उन्मनी से साधक की उस अवस्था का द्योतन होता है जब मन और प्राण अभिन्न हो जाते है। उन्मनी योग के लिए मन को निर्विषय बनाना अनिवार्य है। उन्मनी अवस्था की प्राप्ति के लिए कुभक द्वारा वायु भक्षण करके नवो द्वारो को रोक देने तथा छठे-छमा से कायाकल्प करते रहने का विधान किया गया है।

कबीर ने उन्मनी शब्द का प्रयोग समाधि की विशिष्ट अवस्था, परमतत्त्व और अन्यमनस्क आदि अर्थो मे किया है।

कलश—सत साहित्य मे सहस्रार चक्र के लिए 'कनक कलश' का प्रयोग हुआ है।

कलाली—शराब पिलानेवाली के अर्थ मे सत साहित्य मे प्रयुक्त हुआ है। कलाली का साकेतिक अर्थ सद्गुरु अथवा ईश्वर है। लगता है यह फारसी और सूफी काव्य मे प्रचलित साकी शब्द का पर्यायवाची है।

कुण्डलिनी में—कुण्डलिनी वह मुख्य शक्ति है जो मूलाधार चक्र मे अदृश्य किन्तु अत्यन्त प्रभावोत्पादक रूप मे वर्त्तमान रहती है। कुण्डलिनी योग भी एक इस प्रकार का योग है जिसमें साधक कुण्डलिनी को जाग्रत करता है और नीचे के ६ चक्रो को भेदकर उसे सहस्रार चक्र मे पहुँचाता है। इतना हो जाने पर निर्विकल्प समाधि द्वारा सर्वोच्च ज्ञान और सुख प्राप्त होता है।

स्वयम्भू लिग पर पड़े मूलाधार कमल के त्रिकोण गर्भ मे कुण्डलिनी रहती है। उसकी ३ ऐंठने (सर्पिल) उसके ३ गुण है और जो कम मुडा भाग है वह विकृति है।

सुषुम्ना कन्द के मध्य से सिर की ओर चलती है। सभी नाड़ियो का आदि कन्द ही है। उपस्थेन्द्रिय से २ अगुल नीचे और गुदा से २ अंगुल ऊपर का भाग कन्द है। इसकी शक्ल चिडिया के अण्डे की तरह होती है। इसकी कुल चौडाई ४ अगुल है। इस कन्द से ७२ हजार नाड़ियाँ निकलती है। इन सभी नाडियो मे सुषुम्ना, इडा और पिंगला ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

मेरुदण्ड के दाहिने और बाएँ क्रमशः इडा और पिंगला नाडियाँ रहती हैं। ये दोनो बाये से दाहिने और दाहिने से बाये होकर ऊपर की ओर चलती है। ये

नाडियाँ कमलों के चारो ओर से जाती है और त्रिकुटी पर त्रिवेणी-सी मिलकर नासिका मे चली जाती है। जो नाडी दाहिनी ओर से आती है वह बाएँ नासारध्र मे और जो बायी ओर से आती है वह दाहिने नासारध्र मे प्रवेश करती है। इड़ा चन्द्र-नाडी है और यह शीतलता लिये होती है। पिंगला सूर्यनाडी है और उसका गुण उष्णता है।

मूलाधार एक कमल है, जिसमे चार पखडियाँ (दल) हैं। यही पर कुण्डलिनी इस प्रकार रहती है कि उसमे साढे तीन बार ऐंठन होती है। मूलाधार के मूल मे षट्चक्र होते है। इसीलिए यह 'मूलाधार' कहा जाता है। मूलाधार चक्र मे कुण्डलिनी इस प्रकार प्रकाशमान है जैसे १० हजार सूर्य एक साथ ही चमक रहे हो। पृथ्वी इस चक्र का तत्त्व है। डाकिनी शक्ति का यहाँ वास रहता है। इस कमल का प्रधान देवता ब्रह्म है। इसका बीज 'ल' है।

जननेन्द्रिय की जड मे सुषुम्ना मे एक और कमल स्वाधिष्ठान होता है। इस कमल में ६ पखडिया रहती है। इस चक्र का तत्त्व जल है। इसका बीज 'ब' है। यह वरुण लोक है। यहाँ पर राकिनी का निवास है। यह जल क्षेत्र है। यहाँ के प्रधान देवता विष्णु हैं।

मणिपुर चक्र नाभि मे है। इस कमल मे १० पंखडियाँ हैं। यह अग्नि तत्त्व है। 'क' बीज है। यह अग्नि क्षेत्र है। यहाँ पर लाकिनी का वास है। यहाँ के प्रधान देवता रुद्र है।

अनाहत चक्र हृदय में स्थित कमल है। इसमे १२ पंखडियाँ है। यह वायुलोक है। इसका बीज 'य' है। यहाँ पर काकिनी शक्ति का निवास है। यहाँ के प्रधान देवता ईश हैं।

गले मे विशुद्धि चक्र कमल है जिसमे १६ पखडियाँ है। यह व्योम है। इसका बीज 'हं' है। यहाँ पर शाकिनी शक्ति का वास है। प्रधान देवता सदाशिव हैं।

त्रिकुटी मे जो कमल है वह आज्ञा चक्र है। इसमे दो दल है। मन का स्थान यही पर है। यहाँ पर हाकिनी शक्ति रहती है। प्रधान देवता शम्भु है। यह प्रणव का क्षेत्र है।

सिर के मध्य (ब्रह्मरध्र) मे १ हजार पखडियो का कमल है। यह सहस्रार चक्र है। यही पर परम-शिव का वास है। सहस्रार मे कुण्डलिनी शिव से मिलती है। तब निर्विकल्प समाधि बनती है। सहस्रार मे शिव और शक्ति के मिलने के परिणामस्वरूप जो रस प्रवाहित होता है, समाधि मे उसी से शरीर स्थिर रहता है। सहस्रार में ही मस्तिष्क का वह भाग है जहाँ के लिए कहा जाता है कि वह आत्मा का स्थान है : इसीकी सहायता से निर्विकल्प समाधि बनती है।

योगीगण प्राणायाम, बन्ध तथा मुद्रा से सुषुम्ना का मुँह खोल देते हैं और

सुषुप्त कुण्डलिनी को जाग्रत कर लेते हैं। मूलाधार की इस शक्ति को नीचे के षट्चक्रो से ले जाकर सहस्रार (ब्रह्मरध्र) मे पहुँचा देते है। नीचे के षट्चक्रो मे कुण्डलिनी विश्राम् लेती हुई ऊपर उठती है या यह कहा जा सकता है कि वह उसकी विभिन्न अवस्थाएँ हैं। योगी मूलाधार मे ब्रह्मग्रथियो को भग कर देता है। मणिपुर मे वह विष्णु ग्रन्थि तथा विशुद्धि चक्र स्थित रुद्र ग्रन्थि को भग कर देता है। ये ग्रन्थियाँ कुण्डलिनी के मार्ग मे बाधारूप होती है।

सहस्रार मे बहुत समय तक कुण्डलिनी नही रहती। सहस्रार मे उसका वास साधक की आन्तरिक एव आध्यात्मिक शक्ति तथा साधना की कोटि और विमलता पर निर्भर है। अनेक साधक नीचे के कुछ चक्रो मे ही रह जाते है। उन चक्रो मे जो आनन्द उन्हे मिल जाता है वे उसी मे लीन हो जाते है और इस क्षणिक और कृत्रिम सन्तुष्टि मे आकर वे आगे बढने की चेष्टा नही करते। सहस्रार मे पहुँचने से जो आनन्द मिलता है उसके मार्ग मे चक्रो से प्राप्त आनन्द का रसास्वादन एक प्रकार की बाधा है। जिस प्रकार सम्पन्न व्यक्ति अपने वैभव और ऐश्वर्य मे मग्न होकर संसार को ही सब कुछ समझ लेता है और उसके लिए इस ससार से परे कोई वस्तु रह नही जाती उसी प्रकार कुछ योगी भी चक्रो के आनन्द मे मग्न हो जाते है और भ्रमवश अन्तिम ध्येय तक पहुँचना भूलकर साधना छोड देते हैं। जब सहस्रार मे पहुँच जाय तो साधक को यह चेष्टा करते रहना चाहिए कि उसका अधिकाधिक वास सहस्रार मे रहे।

योगी को सदैव सावधान रहना चाहिए। यदि वह जड-समाधि में लीन हो जायगा तो उसे कोई लाभ नही होगा; उसे आनन्ददायक आध्यात्मिक अनुभव नही मिलेगा। उसे इस लाभहीन परिणाम से बचना चाहिए।

यदि साधक मूलाधार मे प्रवेश कर ले तो फिर उसका आधिपत्य पृथ्वी पर हो जाय। यदि उसने स्वाधिष्ठान पार कर लिया तो फिर जल तत्त्व पर अधिकार हो गया—तब वह भुवर्लोक के निकट पहुँच गया। जब मणिपुर पार कर लिया तो फिर उसने अग्नि पर आधिपत्य कर लिया , अग्नि उसका कुछ बिगाड नही सकती। वह स्वर्गलोक के निकट पहुँच गया। अनाहत चक्र पार कर लेने पर वायु-तत्त्व पर अधिकार हो जाता है। वायु उस पर प्रभाव नही डाल सकेगी। वह महर्लोक के निकट पहुँच जाता है। जब विशुद्धि चक्र पार कर लिया तो फिर व्योम पर अधिकार हो गया। वह ज्ञानलोक मे पहुँच जाता है। आज्ञा चक्र पार कर तपोलोक मे प्रविष्ट हो जाता है। फिर सत्यलोक मे प्रवेश होता है। आज्ञा चक्र और सहस्रार के मध्य मे अन्य छोटे चक्र भी है जिनके नाम ये है—गुरु चक्र, सोम चक्र, ललना चक्र, मानस चक्र आदि।

सहस्रार कमल मे भगवान शिव के साथ मिलने से कुण्डलिनी से पीयूष धारा

प्रवाहित होने लगती है। जब वह नीचे की ओर आती है तो चक्रो को पीयूष द्वारा सीचती है, जिससे वे प्रकाशित हो जाते है। विभिन्न केन्द्रो से साधक को विभिन्न प्रकार के आनन्द का अनुभव होता है। निर्भयता, मन की एकाग्रता और निश्चिन्तिता, ध्यान, कामनारहित अवस्था, सन्तोष, आध्यात्मिक सुख, शान्ति, आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति, विभेद, आत्मनियत्रण, ईश्वर मे अटल विश्वास, भक्ति, मन की स्थिरता, आसन की सिद्धि, विमलता, युक्ति की प्रबल इच्छा, दया, भाषण मे मधुरता, नेत्रो मे ज्योति, मुख पर कान्ति, आकर्षक व्यक्तित्व आदि गुण यह प्रदर्शित करते है कि कुण्डलिनी जाग्रत हो गई है और मूलाधार चक्र को भेद करके वह सुषुम्ना मे प्रविष्ट हो गई है। सुषुम्ना मे जितना ही प्रवेश होता जायगा उतना ही आध्यात्मिकता का अनुभव होगा और तब ये गुण एव प्रतीक अधिकाधिक स्पष्ट होते जायँगे। अन्त मे जब कुण्डलिनी परम भगवान शिव मे लय हो जाती है तब निर्विकल्प समाधि आती है। साधक को मोक्ष मिल जाता है और परम ज्ञान एव अनन्त सुख उसे मिलने लगता है। साधक को नीचे के चक्रो मे आने का आकर्षण होता है। उसे सिद्धियो से दूर रहना होगा। तभी उसका ध्येय पूरा हो सकता है। सिद्धियाँ उसके मार्ग मे बाधा-स्वरूप हैं। यदि वह सिद्धियो की माया मे पड़ेगा तो उसका पतन हो जायगा और वह अपने ध्येय तक नही पहुँच सकेगा। जो साधक या योगी सदैव सावधान नही रहता या जिसमे वैराग्य पूर्णरूपेण नही है, सिद्धियाँ उसके मन को विचलित कर देगी।

जब एक व्यक्ति इन्द्रिय-विषयो से परे हो जाता है तब उसकी कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है। जिस साधक का हृदय विमल और मन विषयवासना से मुक्त होता है वही कुण्डलिनी को जाग्रत कर लाभ उठा सकता है। जो व्यक्ति मन की अशुद्धि के बावजूद बलात् आसन, प्राणायाम और यौगिक क्रियाओ द्वारा इस शक्ति को जाग्रत करना चाहता है वह अपने पैर मे आप ही कुल्हाडी मारता है। उसे योग-सिद्धि नही मिलती। सबसे पहले विमलता आवश्यक है, फिर साधन पथ का ज्ञान, एक योग्य गुरू और क्रमिक अभ्यास।

हठयोगी प्राणायाम, आसनो और मुद्राओ द्वारा कुण्डलिनी को जाग्रत करता है; राजयोगी मन के नियत्रण और एकाग्रता से जाग्रत करता है। भक्तगण पूर्ण आत्म-समर्पण और अनन्य भक्ति से कुण्डलिनी जाग्रत करते हैं। ज्ञानी लोग विवेचना द्वारा और तान्त्रिकगण मन्त्रो द्वारा। कुण्डलिनी जाग्रत होकर जब सहस्रार मे शिव से मिल जाती है तो समाधि की अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

यद्यपि कुण्डलिनी शक्ति का रूप सर्प की भाँति है और उसमे साढ़े तीन सर्पिल या ऐठने हैं, तथापि उसको जिस रूप मे देखने की साधक की इच्छा हो, उसी रूप मे वह दिखलाई पडती है। वह राम, कृष्ण, हरि, शिव, दुर्गा या गायत्री के रूप मे दर्शन दे सकती है। साधक अपने दिव्य चक्षु द्वारा ही उसके सर्पवत् रूप को देखता है।

सहस्रार तक पहुँचने के चार मार्ग है जिनमे से होकर कुण्डलिनी को जाना पड़ता है। सबसे लम्बा मार्ग मूलाधार से सहस्रार तक का है। जो योगी इस मार्ग से कुण्डलिनी को ले जाता है, वह अधिक सफल होता है। सबसे अधिक कठिन मार्ग यही है। श्री शकराचार्य मे इसी मार्ग से कुण्डलिनी गई थी। सबसे छोटा मार्ग आज्ञा चक्र से सहस्रार को है। तीसरा हृदय से सहस्रार को है। चौथा मार्ग मूलाधार से सहस्रार को सामने से है।

यदि योगी आज्ञा चक्र पर ही ध्यान केन्द्रस्थ करता है, तो नीचे के चक्र स्वय ही खुल जाते है और उनपर अधिकार हो जाता है। जिस प्रकार आज्ञा के नीचे ६ चक्र है, उसी प्रकार ६ चक्र ऊपर भी है; वे है—गुरु चक्र, सोम चक्र, मानस चक्र, ललना चक्र आदि।

जब कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है तो साधक विचित्र ध्वनि से गाता है। उसे अनेक दिव्य दृष्यो और गध का अनुभव होता है। हृदय मे मनोबल उत्पन्न हो जाता है। उसे विचित्र प्रकाश दिखलाई पड़ता है, जैसे मूलाधार मे १,००० सूर्य चमक रहे हो।

सख्या	चक्र	देवता	लोक	तत्त्व	दल सख्या	बीज अक्षर
१	मूलाधार	ब्रह्म, गणपति	भू:	पृथ्वी	४	ल
२	स्वाधिष्ठान	विष्णु	भुव:	जल	६	ब
३	मणिपुर	रुद्र	स्व.	तेज	१०	र
४	अनाहत	ईश	मह:	वायु	१२	यं
५	विशुद्धि	सदाशिव	जन:	आकाश	१६	हं
६	आज्ञा	शम्भु	तप:	मानस	२	ओ
७	सहस्रार	परम शिव, परम शक्ति	सत्यम्		१०००	

खुमार—नशा। आध्यात्मिक प्रेम का नशा जो साधक पर अमृतपान से चढ़ता है।

गगन—भारतीय दर्शन का एक प्राचीन शब्द जो योगियो और नाथों के साहित्य मे देशकालातीत ब्रह्म का द्योतक है, साथ ही जो ब्रह्मरध्र का भी प्रतीक माना जाता है। नाथ पथियो ने गगन, नाद और शून्य या सुन्न का प्रयोग सम्बद्ध अर्थों

मे किया है। कबीरदास की रचनाओं मे गगन 'किसी अपूर्व स्थान विशेष का सूचक-सा लगता है'। शून्य का प्रयोग कबीर ने कभी गगनमण्डल के लिए किया है तो कभी परमतत्त्व के लिये।

ताला-कूँची—यह हठयोग का पारिभाषिक शब्द है। बज्रयानी सिद्ध प्राणायाम द्वारा श्वास क्रिया के निरोध को अध और ऊर्ध्व के मार्ग मे ताला लगाना कहते है। कबीर के पहले भी काण्हपा आदि सिद्धो की बानी मे 'ताला-कुजी' का पारिभाषिक प्रयोग हो चुका है—'पवन गमण दुआरे ढिढ ताला वि दि जुई।' गोरखनाथ ने शब्द को ताला माना है और निःशब्द अथवा अजपा को कुजी कहा है। सामान्य लोक मे ताला-चाभी का प्रयोग घर-गृहस्थी को चोरों से सुरक्षित रखने के लिए किया जाता है। सतो ने वासनात्मक मन को चोर कहा है। इस मन से सावधान रहने के लिए हठयोग प्रवर्त्तित श्वास निरोध का ताला सन्त-साधना के अनुसार बडा उपयोगी सिद्ध होता है।

नाद—अनाहत या अनहद नाद। योगी साधना द्वारा मूलाधार चक्र स्थिति कुण्डलिनी को जाग्रत षट्चक्रो का भेदन करते हुए सहस्रार चक्र तक ले जाते हैं। कुण्डलिनी की ऊर्ध्व गति से होनेवाले स्फोट को नाद कहते हैं। समस्त ब्रह्माण्ड मे जो नाद अनाहत भाव से व्याप्त है वही पिण्ड मे भी है पर यह केवल उन्ही को सुनायी पडता है जिनकी कुण्डलिनी जाग्रत है। पहिले यह ध्वनि समुद्र-गर्जन के रूप मे सुनायी पड़ती है, फिर मेघो की गर्जना के रूप मे, फिर शख ध्वनि के रूप मे। अन्त मे यही ध्वनि किंकिणी, भ्रमर, वशी रव के रूप मे सुनायी पडती है।

पिपीलिका मार्ग—कुण्डलिनी को जागृत करने के लिए हठयोग मे दो साधनो की चर्चा की गयी है—पिपीलिका मार्ग और विहगम मार्ग। षट्चक्रो को धीरे-धीरे बेधते हुए कुण्डलिनी को क्रमश· सहस्रार तक पहुँचाना पिपीलिका मार्ग (चीटी की गतिवाला) है और एकदम कुण्डलिनी को सहस्रार तक पहुँचाना विहगम मार्ग (पक्षी के समान एकदम एक पेड से दूसरे पेड़ पर जा बैठना) कहलाता है। पिपीलिका मार्ग श्रेष्ठ नही माना गया है।

प्यंड—पिंड। मनुष्य के शरीर को हठयोग मे पिंड कहा गया है और पिड को ब्रह्माण्ड का सूक्ष्म रूप माना गया है, अत प्रतीक रूप मे बाह्य जगत् की समस्त नदियाँ, पहाड, आकाश आदि को शरीर के भीतर स्वीकार किया गया है। जो कुछ ब्रह्माण्ड मे है, वह सब पिंड में है, यह मानने के कारण योगी पिंड साधना को बडा महत्त्वपूर्ण मानते है। उनके लिए इडा गंगा है, पिंगला यमुना है, सुषुम्ना सरस्वती है और ब्रह्मरध्र प्रयाग है। तालुमूल चन्द्रमा है और नाभिमूल सूर्य है। इसी प्रकार कैलाश, मानसरोवर आदि को भी शरीर मे ही परिकल्पित किया गया है।

बैल—मन के लिए योग साधना मे बैल उपमान का व्यवहार हुआ है। उलट-

बाँसियो मे निर्गुण कवियो ने ससार को बैल से उत्पन्न माना है क्योकि ससार मनसा-सृष्टि है।

भिस्त—भिस्त फारसी शब्द बहिश्त (स्वर्ग) का अपभ्रष्ट रूप है। कुछ विद्वानो ने भिस्त का सम्बन्ध सस्कृत अभीष्ट (अभिप्रेत, आकाक्षित) से जोड़ा है। वस्तुतः सतो द्वारा भिस्त शब्द का प्रयोग दोनो अर्थों मे किया गया है। 'भिस्त' कबीर मे 'दोजख' के साथ आया है और स्वतत्र रूप से भी। 'भिस्त' का कबीर ने जिस रूप मे व्यवहार किया है उसका अर्थ स्वर्ग के स्थूल रूप से नही जोडा जा सकता। कबीर के लिए 'भिस्त' शून्यपद या कैवल्य मुक्ति का पर्यायवाची है और कबीर की साधना का अभीष्ट भी इसी लक्ष्य की प्राप्ति था।

मूसा—निर्गुण संतो द्वारा चचल मन के लिए मूषक उपमान का प्रयोग हुआ है। चचल मन अज्ञान के अधकार मे चूहे की भाँति घूमता फिरता है।

रसना—पिंगला नामक नाडी। साँस लेते समय दाहिने नासिकारध्र से निकलने-वाली वायु इसी पिंगला मार्ग से आती है। इसे चन्द्रनाडी, यमुना भी कहा गया है।

रूख—वृक्ष का तद्भव रूप। सत साहित्य मे पेड, तरवरि, बिरिछ आदि शब्दो का बारम्बार प्रयोग हुआ है। कबीर ने इन शब्दो का प्रयोग कभी ब्रह्म के अर्थ मे—'सहज समाधि बिरिख यहु सीचा धरती जलहरू सोखा', कभी सहस्रार के अर्थ मे—'ऊँचा बिरिख अकासि फल', कभी समाधि के अर्थ मे—'फल मीठा पै तरवर ऊँचा कौन जतन कर लीजै', कभी मेरुदण्ड के अर्थ मे—'समुन्दर लागी आगि। नदिया जलि कोयला भई। देखि कबीर जागि मछी रूखा चढ़ि गयी।' कभी ससार के अर्थ मे—'सुख कै बिरिख यहु जगत उपाया', तो कभी माया के अर्थ मे—'आगै-आगै दौ जरे, पाछे हरियर होय। बलिहारि तेहि बिरिख की जरि काटै फल होय' किया है।

लै—सस्कृत लय का रूप जो सतो द्वारा लौ, ल्यौ आदि रूपो मे भी प्रयुक्त किया गया है। यह सुरति का सहायक है। शरीर के भीतर जो विभिन्न प्राणवायु सचरित होते हैं उन्ही की निरोधावस्था का नाम लय है। चित्तवृत्ति का भीतर ही भीतर विलीन हो जाना भी लय कहा गया है। सतो ने लय योग की भी चर्चा की है। लै या लौ से संतो ने दीपक की ज्वाला का भी आशय व्यजित किया है।

संसा—सशय, सदेह आदि के अर्थ मे सतों द्वारा प्रयुक्त शब्द। कतिपय विद्वानो ने संसा का सम्बन्ध श्वास से भी जोड़ा है। कबीर ने ससा का प्रयोग अपने काव्य मे इस प्रकार किया है कि ससा के दोनों अर्थ सटीक लगते हैं।

सबद—सस्कृत 'शब्द' का तद्भाव रूप। सतों के उपदेशपूर्ण और सिद्धान्त निरूपक गेय पदो को सबद या सबदी कहा गया है। शब्द का अर्थ ज्ञान होता है क्योकि वेद शब्दपरक हैं और वेद को ज्ञान माना गया है। अतः शब्द, वेद और ज्ञान समानार्थी

हुए। संत साहित्य मे गुरू के वचनो को ईश्वर वाणी के समकक्ष स्थान प्रदान किया गया है। यही कारण है कि गुरू की वाणी को सबद या सबदी कहा गया है। यह वाणी 'सर्वज्ञान सम्पन्ना, सर्वकर्माधिष्ठात्री और अतर्क्यभाव से ग्राह्य' मान्री गयी है। कबीर ने अपनी वाणी को 'पूरबी' कहा है। कबीर पथानुयायियो का मत है कि 'पूरबी' से कबीर का आशय 'पूर्व की' (बनारस आदि अचल की) न होकर पूर्व की (सबसे पहिले की अर्थात् वेदकालीन) है।

संत साहित्य मे सामान्य रूप से गुरू की वाणी के लिए और विशेष रूप से गुरू की उपदेशात्मक वाणी को सबद कहा गया है। डॉ० रामखेलावन पाण्डेय का मत है कि अनहद नाद की चर्चा करनेवाली गीतियो के अर्थ मे भी सबद का प्रयोग है।

सुरति—सत साहित्य मे सुरति शब्द का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे हुआ है। सुरति के साथ निरति शब्द का भी प्रयोग प्राय हुआ है। इन दोनो शब्दो की व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से की गयी है। सुरति को कुछ विद्वान् 'स्रोत' शब्द का विकृत रूप मानते है। स्रोत से उनका आशय चित्त प्रवाह से है। कुछ लोगो ने सुरति को 'स्मृति' से व्युत्पन्न माना है। श्रुति अर्थात् वेदो के लिए भी सुरति शब्द का प्रयोग पाया जाता है। स्मृति ग्रन्थो के लिए सूरति, सुमृति जैसे प्रयोग भी कबीर-साहित्य मे उपलब्ध है; किन्तु ये समस्त प्रयोग पारिभाषिक प्रयोग नहीं है। डा० परशुराम चतुर्वेदी का अनुमान है कि सुरति और निरति शब्दो के लिए कबीरदास नाथो के ऋणी हैं। नाथ साहित्य मे सुरति शब्द 'सोचित' अथवा सुचित्त (शब्दोन्मुख चित्त) के लिए और निरति निरवलब चित्त के लिए प्रयुक्त हुआ है। नाथ साहित्य मे सुरति को साधिक और शब्द को सिद्धि कहा गया है। निरति शब्द और सुरति के एकरूप हो जाने की अवस्था है। इसी को शब्द सुरति योग भी कहा गया है।

'सुरति समाणी निरति मैं' आदि साखियो मे कबीर का आशय मन की उस अवस्था से ही हो सकता है जब परम तत्त्व का परिचय उपलब्ध करते समय हमारा मन निरवलब स्थिति मे आ जाये। कबीर ने सुरति (शब्दोन्मुख चित्त) और मन मे अन्तर माना है। सहस्रार के ऊपर जो अष्टम चक्र स्थिति है उसे सुरति कमल इसलिए कहा जाता है कि सुरति जीवात्मा का प्रतीक बन जाती है और परमात्मा की स्मृति बनाये रखती है।

सुषुम्ना—दे० कुण्डलिनी

स्यंभ दुआर—सिंह द्वार। कबीर साहित्य मे स्यभदुआर या सिंभु दुवार शब्द का प्रयोग योगपरक रहस्यवादी रचनाओ मे किया गया है। सहस्रार मे प्रवेश करने के लिए कुण्डलिनी द्वारा ब्रह्मरध्र का उद्घाटन आवश्यक माना गया है, अत. कतिपय विद्वान् सिंह द्वार (प्रवेश द्वार) और ब्रह्मरध्र (सहस्रार का प्रवेश द्वार) को एक ही मानते हैं। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी स्यभ का सम्बन्ध स्वयभू से जोड़ते है और स्यभ

द्वार का अर्थ स्वयभू द्वार (स्वयं उत्पन्न होने, अकृत्रिम मार्ग) करते है। कुछ शोध-कर्त्ताओ ने सिहद्वार को योगशास्त्र की रुद्रग्रन्थि से अभिन्न माना है।

षट्चक्र—दे० कुण्डलिनी।

हंस—हस के कई अर्थ किये गये हैं :—

१. साधक जो हस के समान नीर-क्षीर विवेकी होता है।

२. पुरुष तत्त्व और प्रकृति तत्त्व का एकीभाव।

३ सोऽह का ज्ञान उपलब्ध करनेवाला साधक।

४. परमात्मा।

५. मोक्ष।

६. अजपा जाप।

साखी

गुरुदेव कौ अंग

सतगुर की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार॥ १॥

राम नाम कै पटंतरै, देबे को कुछ नांहि।
क्या ले गुर संतोषिए, हौंस रही मन मांहि॥ २॥

सतगुर साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही मैं मिल गया, पड़्या कलेजे छेक॥ ३॥

---

१. अनँत=अनन्त, सीमाहीन। उपगार=उपकार। उघाड़िया=उद्घाटित कर दिये हैं, खोल दिये है। अनँत=अनन्त, परब्रह्म। दिखावणहार= साक्षात्कार करानेवाले, दिखानेवाले।

२. कै=के। पटतरे=उपमा मे, बदले मे, विनिमय में (मि० सब उपमा कवि रहे जुठारी। को पटतरौ विदेह-कुमारी।—तुलसी) क्या ले=क्या लेकर, किस बूते परे। संतोषिए=संतोष करूँ। हौस=हविश, लालसा, अरमान, हौसला। रही=बाकी ही बचा रहा।

३. सूरिवा=सूरमा। बाह्या=मारा। लागत ही मैं=हृदय के साथ तद्रूप हो गया अथवा लगते ही 'मैं' (अह) नष्ट हो गया। छेक्=छिद्र, घाव, अनासक्ति या दूरी।

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहुणां, बहुरि न आंवौं हट्ट ॥ ४ ॥

जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध।
अंधै अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पड़न्त ॥ ५ ॥

चौंसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा मांहि।
तिहिं घरि किसकौ चानिणौं, जिहि घरि गोंबिद नांहि ॥ ६ ॥

सतगुर मिल्या त का भया, जे मन पाड़ी भोल।
पासि बिनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल ॥ ७ ॥

---

४. दीपक=ज्ञान रूपी दीपक। तेल=भक्ति। बाती=साधना। अघट्ट=कभी न घटनेवाली। बिसाहुणा=क्रय-विक्रय। बहुरि=लौटकर। हट्ट=हाट, बाजार।

५ जाका=जिसका। अधला=अधा, मूढ। खरा=पूरी तरह से, बिल्कुल। निरंध=अधा, मूढ। ठेलिया=ठेलना, मार्गदर्शन करना। दून्यूं=दोनो।

६. चौसठि दीवा=चौसठ कलाएँ (वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र मे चित्रकारी, सीना-पिरोना, पहेली बुझाना, जुआ खेलना आदि की गणना ६४ कलाओ के रूप मे की है)। जोइ करि=ज्योतित कर, जलाकर। चौदह चन्दा=पूर्णमासी का चन्द्रमा (इस्लाम मतावलम्बी पूर्णमासी के चन्द्रमा मे १४ कलाओ का समावेश मानते है क्योकि उनके यहाँ चन्द्रमा की कलाओ की गणना प्रतिपदा से न होकर द्वितीया से होती है। जायसी ने भी पूर्णमासी के चन्द्रमा को १४ कलाओवाला ही कहा है—'चौदह कला चाँद परगासा', 'पदुमावति भै पूनियँ कला। चौदह चाँद उए सिंघला।' कबीर का चौदह चन्दा का प्रयोग फारसी काव्य की परम्परा मे है, किन्तु कबीर ने चौदह चन्दा को चौदह विद्याओ के प्रतीक रूप मे व्यवहृत किया है। मनुस्मृति मे शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त आदि को १४ विद्याएँ कहा गया है)। माहि=पूरित करना (माहि का प्रयोग यहाँ क्रियाविशेषण के रूप मे न होकर क्रिया के रूप मे किया गया है)। चानिणौ=चाँदनी, ज्योत्सना। जिहि=जिस।

७. मिल्या=मिला। त=तो। भया=हुआ। जे=यदि। पाड़ी=पडी हुई है। भोल=भ्रम, अज्ञान। पासि=पास, ताने-बाने। बिनठा=विनष्ट, जर्जर। चोल=परिधान शरीर पर पहनने का कपड़ा, मजिष्ठा रंग।

चौपड़ि मांड़ी चौहटै, अरध उरध बाजार।
कहै कबीरा राम जन, खेलौ संत विचार॥ ८॥

सुमिरण कौ अंग

भगति भजन हरि नांव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा बाचा कर्मनां, कबीर सुमिरण सार॥ ९॥

कबीर सुमिरण सार है, और सकल जजाल।
आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखौ काल॥ १०॥

पंच संगी पिव-पिव करै, छठा जु सुमिरे मंन।
आई सूति कबीर की, पाया राम रतंन॥ ११॥

मेरा मन सुमिरै राम कूं, मेरा मन रार्मांहि आहि।
अब मन रार्मांहि ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि॥ १२॥

---

८. चौपडि=चौपड नामक खेल, बिसात। माडी=मडित है, बिछी है। अरध उरध=नीचे-ऊपर, भावो की गर्मी और नर्मी। राम जन=रामभक्त। विचार=विचारपूर्वक, विवेकपूर्वक।

९. हरि नॉव=ईश्वर का नाम, राम नाम। दूजा=दूसरा, अन्य समस्त साधन। मनसा=मन से। वाचा=वचन से। कर्मना=कर्म से। सुमिरण =स्मरण। सार=तत्व, उपादेय वस्तु।

१०. और=अन्य, शेष सारे माध्यम। जजाल=सतापदायक वस्तुएँ। सोधिया =जांच-पडताल की, खोज की। दूजा=अन्य माध्यमो मे। काल= मृत्यु, विनाश।

११ पच सगी=पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ (नाक, आँख, कान, जिह्वा और त्वचा)। पिव-पिव करै=प्रियतम के नाम की रट लगा रखी है। छठा=छठवी इन्द्रिय मन। सूति=समाधि अवस्था, स्मृति। कबीर=ईश्वर।

१२. कू=को। आहि=है। ह्वै रहा=हो गया है। नवावौ=नमन करूँ। काहि=किसको।

तूं तूं करता तूं भया, मुझ मै रही न हूँ।
बारी तेरे नाउं परि, जित देखौ तित तूँ ॥ १३ ॥

कबीर सूता क्या करै, उठि न रोवै दुक्ख।
जाका बासा गोर मै, सो क्यूं सोवै सुक्ख ॥ १४ ॥

राम पियारा छाँड़ि करि, करै आन का जाप।
बेस्वा केरा पूत ज्यूं, कहै कौन सूँ बाप ॥ १५ ॥

लंबा मारग दूरि घर, बिकट पंथ बहु मार।
कहौ संतौ क्यूं पाइये, दुर्लभ हरि-दीदार ॥ १६ ॥

कबीर चित चमंकिया, चहुँ दिसि लागी लाइ।
हरि सुमिरण हाथूं घड़ा, बेगे लेहु बुझाइ ॥ १७ ॥

बिरह कौ अंग

अंबर कुंजां कुरलियाँ, गरजि भरे सब ताल।
जिनि थैं गोबिंद बीछुटे, तिनके कौण हवाल ॥ १८ ॥

---

१३. तूं तूं करता=तेरे (राम के) नाम का जाप करता हुआ। तू भया=तू (राम) हो गया। हूँ=अहकार, मैं की भावना। बारी=निछावर। जित=जिधर। तित=उधर।

१४. सूता=सुषुप्त, सोया हुआ, अज्ञान मे लिप्त। क्या करै=क्या कर रहा है। बासा=निवास-स्थान। गोर=कब्र। क्यूं=कैसे।

१५. पियारा=प्रिय। छाँडिकर=छोडकर, परित्यागकर। आन=अन्य। बेस्वा=वैश्या। केरा=का। ज्यूं=जैसे। सूँ=से।

१६. बिकट=भयकर। मार=लुटेरे, काम वासनाएँ। दीदार=दर्शन।

१७ चमंकिया=चौकना, चकमक पत्थर। लाइ=लौ, ज्वाला। हाथूं=हाथो मे। बेगे=शीघ्र।

१८. कुंजां=क्रौंच पक्षी। कुरलियाँ=कूकते हैं, चहचहाते है। गरजि=गर्जना से, चीत्कार से। थैं=से। कौण=कौन। हवाल=हाल, दशा।

बासुरि सुख, नाँ रैंणि सुख, नाँ सुख सुपिनैं माँहि।
कबीर बिछुट्या राम सूं, नाँ सुख धूप न छाँह ॥ १६ ॥

मूवां पीछैं जिन मिलै, कहै कबीरा राम।
पाथर घाटा लोह सब, (तब) पारस कौणें काम ॥ २० ॥

यहु तन जालौं मसि करूँ, ज्यूं धूवां जाइ सरग्गि।
मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै अग्गि ॥ २१ ॥

जिहि सरि मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सच पाऊँ नहीं ॥ २२ ॥

बिरह भुवंगम तन बसै, मंत्र न लागै कोइ।
राम बियोगी ना जिवै, जिवै तो बौरा होइ ॥ २३ ॥

सब रँग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुणि सकै, कै साईं कै चित्त ॥ २४ ॥

---

१६. बासुरि=दिन। सूँ=से।

२०. मूवा=मरने के। पीछै=उपरात, बाद मे। जिनि=मत। घाटा=घटकर, बदलकर। पारस=एक काल्पनिक पत्थर जिसके स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है।

२१ जालौ=जलाऊँ, दग्ध करूँ। मसि=स्याही, कोयला। ज्यूँ=जिससे कि, ताकि। सरग्गि=स्वर्ग। मति=हो सकता है कि, सम्भवतः।

२२ जिहि=जो। सरि=बाण। मारी=मारा था। काल्हि=कल। तिहि=वह। अजहूँ=आज भी। सच=सुख।

२३. भुवगम=भुजग, सर्प। न लागै=काम नही आता, निरर्थक सिद्ध होता है।

२४ रँग=रग, शिराएँ, नाडियाँ। तत=तन्तु, ताँत जो वाद्य यत्रो में तार की तरह प्रयुक्त होती है। रबाब=तात का बना हुआ सारगी की तरह का एक बाजा। इसे भारतीय वीणा का विकसित रूप माना गया है किन्तु वस्तुतः रबाब दर्दुर नामक बाजे का देसी नाम है जो विदेशो मे वायलिन के रूप मे प्रतिष्ठित हुआ।

अंषड़ियां झांई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियां छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि॥ २५ ॥

इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूं जीव।
लोही सींचौ तेल ज्यूं, कब मुख देखौं पीव॥ २६ ॥

कै बिरहणि कुं मीच दे, कै आपा दिखलाइ।
आठ पहर का दाझणां, मोपै सह्या न जाइ॥ २७ ॥

ग्यान बिरह कौ अंग

हिरदा भीतरि दौ बलै, धूवा न प्रगट होइ।
जाकै लागी सौ लखै, कै जिहि लाई सोइ॥ २८ ॥

अगनि जु लागी नीर मैं, कंदू जलिया झारि।
उत्तर दषिण के पडिता, रहे विचारि विचारि॥ २९ ॥

अहेड़ी दौ लाइया, मृग पुकारे रोइ।
जा बन में क्रीला करी, दाझत है बन सोइ॥ ३० ॥

---

२५ अषडियाँ=आँखो मे (मध्यकालीन साहित्य मे ष का उच्चारण ख होता था। र व और ख के भ्रम से बचने के लिए मध्यकालीन लिपिकारो ने ख के बदले ष का प्रयोग किया है)। झाँई=जाला। जीभडियाँ=जीभ मे।

२६ दीवा=दीपक। मेल्यू=डालूँ, रखूँ, लगाऊँ। लोही=लहू, रक्त।

२७. कै=या तो। कु=को। आपा=अपना वास्तविक स्वरूप। दाझणा=दग्ध होना, जलना। मो पै=मुझसे।

२८. दौ=दावाग्नि, ज्ञान की ज्योति। बलै=प्रज्वलित है। जाकै=जिसके। लागी=लगी है। कै=अथवा। जिहि=जिसने। लाई=लगायी है। सोइ=वह।

२९. अगनि=अग्नि, ज्ञानाग्नि। नीर=माया से आक्रात शरीर। कदू=काँदो, कीचड़, पाप वासनाएँ। जलिया=जल गये। झार=ज्वाला मे। उत्तर दषिण=सभी दिशाओ के।

३०. अहेडी=आखेटक, गुरू। दौ=दावाग्नि, ज्ञान की अग्नि। लाइया=जलाई। मृग=माया मे फँसा हुआ जीव। जा=जिस। बन=विषय-वासनाओ से परिपूर्ण ससार। क्रीला=क्रीडा, लीला। दाझत=दग्ध हो रहा है। सोइ=वही।

समदर लागी आगि, नदियां जलि कोयला भई।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूषां चढ़ि गई॥ ३१॥

परचा कौ अंग

हदे छाडि बेहदि गया, हुवा निरंतर वास।
कवल ज फूल्या फूल बिन, को निरषै निज दास॥ ३२॥

सायर नाहीं सीप बिन, स्वांति बूंद भी नांहि।
कबीर मोती नीपजै, सुन्नि सिषर गढ़ मांहि॥ ३३॥

घट मांहैं औघट लह्या, औघट माहैं घाट।
कहि कबीर परचा भया, गुरू दिखाई बाट॥ ३४॥

पांणी ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कह्या न जाइ॥ ३५॥

सुरति समांणीं निरति मैं, अजपा मांहैं जाप।
लेख समांणा अलेख मैं, यूं आपा मांहै आप॥ ३६॥

३१. समदर=माया रूपी ससार। आगि=ज्ञान की अग्नि। नदिया=विषय-वासनाएँ। कोयला=राख। मछी=मछली, सद् प्रवृत्तियाँ। रूषाँ=साधना रूपी वृक्ष, ब्रह्म।

३२. हदे=हद, सीमा, संसार। बेहदि=असीम, ब्रह्म। निरंतर=स्थायी। कवल=सहस्रदल कमल। को=कौन। निरषै=देख सकता है।

३३. सायर=सागर। बिन=बिना (सीपी भी नही है)। नीपजै=उत्पन्न होता है। सुन्नि सिषर=शून्य शिखर, सुषुम्ना के शीर्षाग्र पर विकसित कमल का शून्य प्रदेश।

३४. घट=शरीर। माहैं=मे। औघट=निराकार ईश्वर। लह्या=लब्ध किया, पाया। औघट=बीहड, हठयोग का कठिन पंथ। घाट=गतव्य, लक्ष्य, सिद्धि। परचा=परिचय। बाट=मार्ग।

३५. पाणी=पानी, परमतत्त्व, ब्रह्म, आत्मा का मुक्त स्वरूप। हिम=बर्फ, जडतत्त्व, बद्धजीव। बिलाइ=विलीन।

३६. सुरति=ईश्वर के प्रति प्रेम, चित्तवृत्ति, इडा। निरति=अनासक्ति, वैराग्य, पिंगला। 'सुरति जब इतनी पूर्ण हो जाती है कि···परमात्मा के साथ जीवात्मा का सम्बन्ध······ तादात्म रूप से हो जाता है, वह अवस्था

(शेष आगे के पृष्ठ पर)

मान सरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुकताहल मुकता चुगै, अब उड़ि अनत न जाहिं॥ ३७॥

गगनं गरजि अमृत चवै, कदली कवल प्रकास।
तहा कबीरा बंदिगी, कै कोई निज दास॥ ३८॥

आकासे मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि।
ताका पाणीं को हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि॥ ३९॥

रस कौ अंग

राम रसाइन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवण दुलभ है, मांगै सीस कलाल॥ ४०॥

(पिछले पृष्ठ का शेष)

निरति कहलाती है।' डा० पीतांबर दत्त बडथ्वाल। अजपा=निरायास मौन जप, माला, जिह्वा आदि उपकरणो के बिना ही प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ 'सोऽह सोऽह' का सूक्ष्म जाप। जाप=प्रभु के नाम का मुखर स्मरण जो माला या जिह्वा के माध्यम से सम्पन्न किया जाये। लेख=सगुण साकार ईश्वर। अलेख=निर्गुण निराकार ईश्वर। आपा=आत्मा, अपनत्व। आप=ईश्वर।

३७. मान सरोवर=ब्रह्माण्ड, योग साधना का वह शून्य मण्डल जहाँ सहस्रार चक्र की स्थिति मानी जाती है। सुभर=स्वच्छ, भरपूर। हंसा=मुक्तात्मा। मुकताहल=मुक्ताफल। मुकता=मुक्त पुरुष। अनत=अन्यत्र।

३८. गगन=ब्रह्माण्ड, शून्य मण्डल। गरजि=अनहद नाद हो रहा है। अमृत=संजीवनी। चवै=चू रहा है, निस्रत हो रहा है। कदली=मेरु-दण्ड। कवल=सहस्रदल कमल। बदिगी=उपासना मे निरत है। कै=अथवा। निज=विशिष्ट।

३९. आकासे=ऊपर, शून्य मे। मुख औधा=औधे या नीचे की ओर मुँह-वाला। कुवाँ=सहस्रदल कमल, ब्रह्मताल। पाताले=नीचे की ओर, मूलाधार चक्र। पनिहारि=मूलाधार चक्र मे निवास करनेवाली कुण्डलिनी। हसा=सिद्ध, सन्त। आदि=मूल रहस्य।

४०. रसाइन=रसायन, कई द्रव्यो से निर्मित्त नया द्रव्य। पीवत=पान करने मे। रसाल=मधुर। सीस=अहकार, बडा मूल्य। कलाल=कलवार, मदिरा विक्रेता, गुरू।

कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपै सोई पिवै, नहीं तौ पिया न जाइ ॥ ४१ ॥

जिहि सर घड़ा न डूबता, अब मैंगल मलि न्हाइ।
देवल बूड़ा कलस सूं, पंषि तिसाई जाइ ॥ ४२ ॥

सबै रसांइण मै किया, हरि सा और न कोइ।
तिल इक घट मै संचरै, तौ सब तन कंचन होइ ॥ ४३ ॥

लांबि कौ अंग

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बूंद समानी समंद मै, सो कत हेरी जाइ ॥ ४४ ॥

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
समंद समाना बूंद मैं, सो कत हेर्या जाइ ॥ ४५ ॥

जर्णा कौ अंग

भारी कहौं त बहु डरौं, हलका कहूँ तौ झूठ।
मै का जांणों राम कूं, नैनूं कबहुँ न दीठ ॥ ४६ ॥

---

४१. भाठी=भट्टी। कलाल=गुरू रूपी कलवार। बहुतक=बहुतेरे मुक्ति कामी।

४२ जिहि=जिस। सर=सरोवर, भगवत प्रेम रूपी तालाब। घडा=मानसिक वृत्ति। डूबता=तल्लीन होती थी। मैंगल=मतवाला हाथी, सपूर्ण मन। मलि=मल-मलकर, सारे विकारो को दूर करता हुआ। देवल=मदिर रूपी शरीर। कलश=अहकार रूपी शीर्ष। पषि =चचल मनोवृत्तियाँ। तिसाई=तृषाकुल।

४३. रसाइण=कीमियागिरी, उपाय, साधनाएँ। तिलइक=तिलभर, रंचमात्र। मध्यकाल मे पारा आदि निकृष्ट धातुओ को विशिष्ट रासायनिक द्रव्यो के सयोग से कुदन बनाने की विधियाँ प्रचलित थी।

४४ हेरत हेरत=खोजते-खोजते। हिराइ=खो गया है। बूद=जीवात्मा। समद्र=समुद्र रूपी ब्रह्म। कत=कैसे। हेरी=खोजी।

४५. समद=समुद्र। हेर्या=ढूंढा।

४६. त=तौ

दीठा है तो कस कहूँ, कह्याँ न को पतियाइ।
हरि जैसा है तैसा रहो, तूं हरिषि हर्राष गुण गाइ ॥ ४७ ॥

लै कौ अंग

सुरति ढीकुलो लेज ल्यौ, मन नित ढोलन हार।
कँवल कुवाँ मै प्रेम रस, पीवै बारबार ॥ ४८ ॥

गंग जमुन उर अंतरै, सहज सुंनि ल्यौ घाट।
तहाँ कबीर मठ रच्या, मुनि जन जोवै बाट ॥ ४९ ॥

निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग

कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।
नैनूं रमाइया रमि रह्या, दूजा कहां समाइ ॥ ५० ॥

दोजग तौ हम अंगियां, यहु डर नाहीं मुझ्झ।
भिस्त न मेरे चाहिए, बाझ पियारे तुझ्झ ॥ ५१ ॥

---

४७ दीठा है=देखा है। पतियाइ=प्रत्यय करता है, विश्वसनीय मानता है।

४८. सुरति=स्मृति (विस्तार के लिए दे० 'कबीरदास के काव्य मे प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली' नामक अध्याय)। ढीकुलो=कुएँ से पानी निकालने का एक उपकरण। लेज=रस्सी। ल्यौ=लौ, प्रेम। ढोलन हार=पानी खीचनेवाला। कँवल कुवाँ=ब्रह्मरध्र, शून्य मडल जहाँ अमृत भरा हुआ है। पीवै=साधक पीता है।

४९. गंग=इडा नामक नाडी। जमुन=पिंगला नामक नाडी। सहज=सहज समाधि। सुनि=शून्य मडल। ल्यौ=प्रेम, ध्यान। मठ=साधना-स्थल। जोवै=प्रतीक्षातुर है।

५०. स्यदूर=सिन्दूर, सौभाग्य का चिन्ह।

५१. दोजग=दोजख, नरक। अगियां=अगीकार किया। मुझ्झ=मुझे। भिस्त=बहिश्त, स्वर्ग। बाझ=छोड़कर।

मन प्रतीति न प्रेम रस, नाँ इस तन मैं ढंग।
क्या जाणौं उस पीव सूं, कैसे रहसी रंग ॥ ५२ ॥

घरि परमेसुर पांहुणाँ, सुणौं सनेही दास।
षट रस भोजन भगति करि, ज्यूं कदे न छाड़ै पास ॥ ५३ ॥

चितावणी कौ अंग

कबीर नौबति आपणीं, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पट्टन ए गली, बहुरि न देखै आइ ॥ ५४ ॥

सातौ सबद ज्रु बाजते, घरि घरि होते राग।
ते मन्दिर खाली पड़े, बैसण लागे काग ॥ ५५ ॥

कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस।
नाँ जाणौं कहाँ मारिसी, कै घरि कै परदेस ॥ ५६ ॥

यह ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल।
दिन दस के ब्यौहार कौं, झूठै रंगि न भूलि ॥ ५७ ॥

खभा एक गइंद दोइ, क्यूं करि बांधिसि बारि।
मानि करै तौ पीव नहीं, पीव तौ मानि निवारि ॥ ५८ ॥

---

५२ प्रतीति=आत्मविश्वास। ढंग=आकर्षण। रहसी=रहेगा, स्थापित होगा। रग=प्रेम, आनन्द केलि।

५३ घरि=घर में। पाहुणाँ=मेहमान, पति। ज्यूँ=ताकि। कदै=कभी।

५४. नौबत=आनन्द वाद्य। आपणी=अपनी। दिन दस=कुछ काल के लिए। पटन=नगर। बहुरि=लौटकर।

५५. सातौ सबद=सा रे गा मा पा धा नि, विभिन्न राग-रागिनियाँ, झाँझ, मृदग, शख, शहनाई, ढोल, बीन, बाँसुरी। संगीत का पूर्ण सभार। जु=जहाँ। राग=सगीत। बैसण=बैठने।

५६. गरबियौ=गर्व करना। कर=हाथो मे।

५७. सैंबल फूल=सेमल के फूल की तरह क्षणस्थायी।

५८. खभा=अस्मिता, जीवन। गइद=गयद, हाथी। बारि=द्वार पर। मानि=अहकार। निवारि=निवारणकर।

उजल कपड़ा पहरि करि, पान सुपारी खांहि।
एकै हरि का नाँव बिन, बाँधे जमपुरि जांहि ॥ ५६ ॥

माँइ बिड़ाणी बाप बिड़, हम भौं मझि बिड़ाह।
दरिया केरी नाव ज्यूं, संजोगे मिलियांह ॥ ६० ॥

मन कौ अंग

इस मन कौ बिसमल करौं, दीठा करौं अदीठ।
जे सिर राखौं आपड़ा, तौ पर सिरिज अंगीठ ॥ ६१ ॥

एक ज दोसत हम किया, जिस गलि लाल कबाइ।
सब जग धोबी धोइ मरै, तौ भी रंग न जाय ॥ ६२ ॥

पांणीं हीं तै पातला, धूंवाँ ही तै झीण।
पवनां बेगि उतावला, सो दोसत कबीरै कीन्ह ॥ ६३ ॥

कबीर मन गाफिल भया, सुमिरण लागै नांहि।
घणीं सहैगा सासनां, जम की दरगह मांहि ॥ ६४ ॥

---

६० माइ=मा। बिडाणी=परायी। बिड़=विट, यहाँ-वहाँ घूमनेवाला आवारा पुरुष। भौ=भव, ससार। मझि=मध्य, मे। बिड़ाह=पराये, अजनबी। दरिया=नदी, नदी नाव सयोग।

६१. बिसमल=घायल, प्रेम बाण से बिद्ध (यह अरबी बिस्मिल शब्द है जो प्रायः प्रेमी के लिए प्रयुक्त होता है)। दीठा=दृष्ट, इन्द्रियगम्य ससार। अदीठ=अदृष्ट, निराकार ब्रह्म। सिर=अहकार। सिरिज=बनाऊँ, रखूँ। अगीठ=अँगीठी, आग।

६२. ज=जो। दोसत=प्रियतम। गलि=कठ। कबाइ=यह अरबी का कबा शब्द है जिसका अर्थ होता है एक प्रकार का लबा ढीला पहनावा। लाल रग प्रेम का व्यजक है।

६३ झीण=झीना, क्षीण। बेगि=गति। उतावला=तीव्र।

६४. गाफिल=लापरवाह, बेसुध, कर्त्तव्यच्युत (अरबी गाफिल)। सुमिरण=स्मरण। लागै नांहि=तल्लीन नही होता। घणी=बहुत अधिक। सासना=शासन, दण्ड। जम=यम, मृत्यु। दरगह=दरगाह, कचहरी।

भगति दुवारा संकड़ा, राई दसवै भाइ।
मन तो मैंगल ह्वै रह्यो, क्यूं करि सकै समाइ ॥ ६५ ॥

सूषिम मारग कौ अंग

कबीर मारिग कठिन है, कोई न सकई जाय।
गए ते बहुड़े नहीं, कुसल कहै को आइ ॥ ६६ ॥

जन कबीर का सिषर घर, बाट सलैली सैल।
पाव न टिकै पपीलका, लोगनि लादे बैल ॥ ६७ ॥

माया कौ अंग

कबीर माया पापणी, हरि सूं करै हराम।
मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम ॥ ६८ ॥

जाणौं जे हरि कौं भजौं, मो मनि मोटी आस।
हरि बिचि घालै अंतरा, माया बड़ी बिसास ॥ ६९ ॥

---

६५. दुवारा=द्वार। सकडा=सँकरा। राई=लाल रंग की सरसो जो प्राचीन काल मे लघुता का प्रतिमान थी। दसवै भाइ=दसवाँ भाग। मैगल=मतवाला हाथी, विषय-वासनाओ मे लिप्त मन।

६६. मारिग=ब्रह्म-प्राप्ति की साधना। बहुड़े=वापिस लौटना। आइ=आकर।

६७. जन=भक्त। सिषर=शिखर, ब्रह्माड मे स्थित शून्य शिखर। सलैली=गीली, पिच्छल, फिसलनमयी। नाड़ी जल से सुषुम्ना का मार्ग फिसलना भरा है। सैल=शैल, पर्वत, चक्ररूपी पर्वत। पपीलका=चीटी, सूक्ष्म साधक। लोगनि=सगुण, साकार के उपासक। बैल=मन रूपी बैल को सासारिक विषय-वासनाओ से लाद रखा है।

६८. पापणी=पापिन। सूँ=से। हराम=विश्वासघात। कडियाली=वल्गा, लगाम, कडियोवाली। कुमति=दुर्बुद्धि।

६९. जाणौं=प्रत्यक्षतः लगता है। जे=कि। मो=मेरे। मोटी=अत्यधिक। आस=विषय-वासनाएँ। घालै=डालती है, उत्पन्न करती है। बिसास=विश्वासघातिन। मध्यकालीन कवियो ने 'विसास' का प्रयोग विश्वास-

(शेष आगे के पृष्ठ पर)

त्रिष्णां सींची ना बुझै, दिन दिन बधती जाइ।
जवासा के रूष ज्यूं, घण मेहाँ कुमिलाइ ॥ ७० ॥

कबीर गुण की बादली, तीतरबानी छांहि।
बाहरि रहे ते ऊबरे, भींगे मन्दिर मांहि ॥ ७१ ॥

चांणक कौ अंग

स्वामी हूँणां सोहरा, दोद्धा हूँणां दास।
गाडर आंणी ऊन कूं, बाँधी चरै कपास ॥ ७२ ॥

कासी कांठै घर करै, पीवै निर्मल नीर।
मुकति नहीं हरि नांव बिन, यौं कहै दास कबीर ॥ ७३ ॥

कथणीं बिना करणीं कौ अंग

कबीर पढ़िबा दूरि करि, पुसतक देइ बहाइ।
बांवन आषर सोधि करि, ररै ममै चित लाइ ॥ ७४ ॥

(पिछले पृष्ठ का शेष)
घात के अर्थ मे किया है। मि० 'कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवान को लै बरसो—घनानन्द।

७०. बधती=बढती। जवासा=एक पौधा जो वर्षा के जल से सूख जाता है। रूष=वृक्ष। घण=घने। मेहा=बादलों में।

७१. गुण=त्रिगुण, सतरज तम। बादली=बदली। तीतरबानी=तीतर-वर्णी। कहते है कि तीतर के से पंखोवाले बादल निश्चित बरसते है। ऊबरे=बचे। मदिर=ससार रूपी घर।

७२ हूँणां=होना। सोहरा=सुलभ है, आसान है। दोद्धा=दुर्लभ, कठिन है। गाडर=गड्डलिका, भेड़। आणी=लाये। कूं=के लिए, निमित्त।

७३. कासी काठै=काशी के निकट।

७४. पढिबा=पढना, अध्ययन करना। देह बहाइ=बहा दे। बावन=देवनागरी वर्णमाला। सोधि करि=संधान कर। ररै ममैं=रा और म मे, राम मे।

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ ।
एकै अषिर पीव का, पढ़ै सु पंडित होइ ।। ७५ ।।

कामी नर कौ अंग

कांमणि काली नागणीं, तीन्यूं लोक मझारि ।
रांम सनेही ऊबरे, बिषई खाये झारि ।। ७६ ।।

नारि नसावै तीनि सुख, जा नर पासैं होइ ।
भगति मुकति जिन ग्यान मैं, पैसि न सकई कोइ ।। ७७ ।।

एक कनक अरु कांमनीं, विष फल कीए उपाइ ।
देखैं ही थैं विष चढ़ै, खांयें सू मरि जाइ ।। ७८ ।।

सुंदरि थैं सूली भली, बिरला बचै कोइ ।
लोह निहाला अगनि मैं, जलि बलि कोइला होय ।। ७९ ।।

सांच कौ अंग

लेखा देणां सोहरा, जे दिल सांचा होइ ।
उस चंगे दीवांन मै, पला न पकड़ै कोइ ।। ८० ।।

---

७५. अषिर=अक्षर । सु=सो, वह ।

७६. कामिनी=स्त्री । नागिणी=नागिन । मझारि=मध्य मे । ऊबरे=बच गये । बिषई=विषयी, सासारिकजन । खाये झारि=झाडकर, पूर्णत. खा लिया है, एक भी विषयी कामिनी से बचा नही है।

७७. नसावै=नष्ट करती है। जा=जो । पासै=पास मे, निकट । पैसि= प्रविष्ट ।

७८. कीए=किये । उपाइ=उत्पन्न । खाये सू =खाने से ।

७९. थैं=से, सुन्दरी की तुलना मे । सूली=फाँसी । बचै =बचता है । निहाला =डाला । जलि बलि=प्रज्वलित होकर ।

८०. लेखा=हिसाब । देणा=देना, प्रस्तुत करना । सोहरा=सरल । जे= जो । चगे=श्रेष्ठ । दीवान=दरबार । पला=पल्ला ।

खूब खाँड है खीचड़ी, माँहि पड़ै टुक लूंण।
पेड़ा रोटी खाइ करि, गला कटावै कौंण ॥ ८१ ॥

भ्रम विधौसण कौ अंग

हम भी पाँहन पूजते, होते रन के रोझ।
सतगुर की कृपा भई, डारया सिर थैं बोझ ॥ ८२ ॥

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाँणि।
दसवाँ 'रा देहुरा, तामै जोति पिछाँणि ॥ ८३ ॥

भेष कौ अंग

कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि।
मन न फिरावै आपणां, कहा फिरावै मोहि ॥ ८४ ॥

केसो कहा बिगाड़िया, जे मूंडै सौ बार।
मन कौं काहे न मूंडिए, जामै बिषै बिकार ॥ ८५ ॥

---

८१. खाँड=मीठी, मधुर आहार। माँहि=मे। टुक=जरा सा। लूण=नमक।

८२. रन=अरण्य, जगल। रोझ=पशु; जगली जानवर। डारया=दूर कर दिया। थैं=से।

८३. मथुरा=प्रसिद्ध मथुरा नगरी जहाँ कृष्ण का यौवन बीता था। द्वारिका=महाभारतकालीन प्रसिद्ध नगरी जहाँ कृष्ण ने राज्य किया था। कासी=काशी नगरी। दशवाँ द्वारा=दशम द्वार, शरीर मे आँख, कान, मुँह आदि नौ रध्र होते है। ब्रह्मरध्र दशम द्वार कहलाता है। देहुरा=देवालय। तामै=उसमे। पिछाँणि=परिचयकर, साक्षात्कार कर।

८४. काठ=चन्दन, तुलसी आदि की लकडी। कहा=क्यो। फिरावै=फेर रहा है।

८५. केसो=केशो ने। जामैं=जिसमे। विषै बिकार=विषय-विकार।

८६. सिधि=सिद्धि। सहजै=सहज ही।

तन कौं जोगी सब करैं, मन कौं बिरला कोइ।
सब सिधि सहजै पाइए, जे मन जोगी होइ ॥ ८६ ॥

नवसत साजे कांमनीं, तन मन रही सँजोइ।
पीव कै मनि भावै नही, पटम कीयें क्या होइ ॥ ८७ ॥

कुसंगति कौ अंग

मूरिष संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ।
कदली सीप भवंग मुष, एक बूंद तिहूँ भाइ ॥ ८८ ॥

मारी मरूं कुसंग की, केला काँठै बेरि।
वो हालै वो चीरिये, साषित संग नबेरि ॥ ८९ ॥

माषी गुड़ि मै गड़ि रही, पंष रही लपटाइ।
ताली पीटै सिर धुनैं, मीठै बोई माइ ॥ ९० ॥

---

८७. नवसत=नौ और सात अर्थात् सोलह श्रृङ्गार (१. शौच २ उबटन ३. स्नान ४. केशबधन ५. अगराग ६. अजन ७. महावर ८. दतरजन ९. ताबूल १० बसन ११ भूषण १२. सुगन्ध १३. पुष्पहार १४. कुकुम १५ भाल तिलक १६. चिवुक-बिन्दु।) सजोइ=सुसज्जित कर। पटम =पट्टी पाडना।

८८. जलि=जल, पानी। न तिराइ=नही तैरता, डूब जाता है। एक बूँद =स्वाति का जल। तिहूँ भाइ=तीन प्रतिक्रियाएँ। कहते है कि स्वाति का जल केले मे पडकर कपूर, सीप मे पडकर मोती और साप के मुख मे पड़कर विष बन जाता है। मि० कदली सीप भुजग मुख, स्वाति बूंद गुन तीन—रहीम।

८९. केला काँठै बेरि=केले के समीप बेर का पेड। एक कोमल और चिकना होता है, दूसरा कांटोवाला और रूखा। हालै=हिलता है। चीरिये= फाड़ता है। साषित=शाक्त। नबेरि=दूर रख, निवारणकर।

९०. माषी=मक्खी, आत्मा। गुडि=माया, आकर्षण। ताली पीटै=पख फड- फडाती है। मीठै=विष, आसक्ति। बोई=बोई है, उत्पन्न की है। माइ =माया ने।

ऊँचै कुल क्या जनमियाँ, जे करणीं ऊंच न होइ।
सोवन कलस सुरै भर्या, साधूं निंद्या सोइ॥ ९१॥

साध कौ अंग

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलांहि।
अंक भरे भरि भेंटिया, पाप सरीरौं जांहि॥ ९२॥

साध साषीभूत कौ अंग

निरबैरी निह-कांमता, साईं सेती नेह।
बिषिया सूं न्यारा रहै, संतनि का अग एह॥ ९३॥

कबीर हरि का भांवता, दूरै थै दीसंत।
तन षीणा मन उनमना, जग रूठड़ा फिरंत॥ ९४॥

काम मिलावै रॉम कूं, जे कोई जॉणै राषि।
कबीर बिचारा क्या करै, जाका सुखदेव बोलै साषि॥ ९५॥

फाटै दीदै मै फिरौं, नजरि न आवै कोइ।
जिहि घटि मेरा साइयां, सो क्यूं छांनां होइ॥ ९६॥

---

९१ जनमियाँ=जन्म लेना। सोवन=स्वर्ण। सुरै=सुरा, मदिरा। भर्या=भरा। साधू=सतजन।

९२ जा दिन=जिस दिन। अक=गले, आलिगन। सरीरौ=शरीर से।

९३. निरबैरी=सबसे मित्रभाव, वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना। निहकामता=निष्कामता, अनासक्ति। साईं=ईश्वर। सेती=से, के प्रति। विषिया=विषय-वासनाएँ। सूं=से। न्यारा=विलग, दूर। अग=विशेषता, पहिचान। एह=यह।

९४. भावता=प्रिय। दीसत=दृष्टिगोचर होता है। षीणा=क्षीण, दुर्बल। उनमना=आत्मलीन। रूठडा=विरक्त। फिरंत=घूमता रहता है।

९५. काम=कर्म, कर्म ही ईश्वर है। जाणै राषि=यह ज्ञान प्राप्त करे। जाका=जिसका। सुखदेव=शुकदेव (व्यास के पुत्र जिन्होने जनक से अध्यात्म विद्या प्राप्त की थी)।

९६. फाटे दीदै=फटी आँखो से, आँखे खोलकर। जिहि=जिस। घट=शरीर। छाना=गुप्त।

साध महिमां कौ अंग

चंदन की कुटकी भली, नां बंबूर की अबरांउ।
बैश्नों की छपरी भली, नां साषत का बड़ गाउं ॥ ९७ ॥

कबीर भया है केतकी, भंबर सब भये दास।
जहां जहां भगति कबीर की, तहां तहाँ राम निवास ॥ ९८ ॥

मधि कौ अंग

बासुरि गमि न रैणि गमि, नां सुपनैं तर गंम।
कबीर तहां बिलंबिया, जहाँ छांहड़ी न घंम ॥ ९९ ॥

हिंदू मूये रांम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुह मै कदे न जाइ ॥ १०० ॥

सबद कौ अंग

सतगुर ऐसा चाहिए, जैसा सिकलीगर होइ।
सबद मसकला फेरि करि, देह द्रपन करै सोइ ॥ १०१ ॥

---

९७. कुटकी=तनिक सा चूर्ण (कुछ टीकाकारो ने कुटकी का अर्थ कुटिया किया है जो गलत है)। पूर्वी बोलियो मे कुटकी का प्रयोग चुन (चूर्ण) के लिए किया जाता है जैसे कोदो कुटकी। अबराऊ=अमराई, वन। बैश्नो=वैष्णव। छपरी=छप्पर। साषत=शाक्त बड गाउं=बड़ा नगर, समृद्ध ग्राम।

९८. कबीर=ईश्वर, स्वय कवि। केतकी=केतकी का पुष्प। भंबर=भ्रमर। केतकी के पुष्प भौरो को विशेष रूप से लुब्ध करते हैं। दास=भक्त।

९९. बासुरि=दिवस। गमि=गम, दु:ख, चिन्ता। बिलबिया=बिलम गया है, शरण प्राप्त की है। छाँहड़ी=छाया। घम=घाम।

१००. मूये=मर गये, नष्ट हो गये। दुह=दुविधा, दोनो। कदे=कभी।

१०१. सिकलीगर=हथियार स्वच्छ करनेवाला कारीगर। मसकला=हथियार स्व छकरने के पत्थर का चक्का जो एक दूसरे चक्के को घुमाने से पट्टे की सहायता से घूमता है। देह=शरीर। द्रपन=दर्पण, निर्मल।

हेत प्रीत कौ अंग

कमोदनी जलहरि बसै, चंदा बशे अकासि।
जो जाही का भावता, सो नाही के पास ॥ १०२ ॥

सूरा तन कौ अंग

गगन दमांमाँ बाजिया, पढ़्या निसानै घाव।
खेत बुहार्‌या सूरिवै, मुझ मरणे का चाव ॥ १०३ ॥

सूरा तब ही परषिये, लड़ै धर्णी कै हेर।
पुरिजा पुरजा ह्वै पड़ै, तऊ न छाड़ै खेत ॥ १०४ ॥

जिस मरनै थै जग डरै, सो मेरे आनन्द।
कब मरिहूँ कब देखिहूँ, पूरन परमानंद ॥ १०५ ॥

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाँहि।
सीस उतारै हाथि करि, पैसे घर माँहि ॥ १०६ ॥

प्रेम न खेतौं नींपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ।
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ ॥ १०७ ॥

---

१०२. जलहरि=जलाशय। जाही=जिसका। भावता=प्रिय।

१०३. गगन=आकाश, शून्य मण्डल। दमामा=नगाडा, अनहद नाद। निसानै =निशान पर, मर्म पर। घाव=आघात, कुण्डलिनी का विस्फोट। खेत बुहारना=युद्ध क्षेत्र को युद्ध के पहले स्वच्छ करना, विरोधियो का सफाया करना, यहाँ काम क्रोधादि को नष्ट करना।

१०४ धणी=धनी, प्रियतम। हेत=प्रेम की प्राप्ति के लिए या प्रेम मे तल्लीन होकर। पुरिजा पुरिजा=टुकडे-टुकडे। तऊ=तब भी। खेत=युद्ध-क्षेत्र।

१०५. पूरन=पूर्ण पुरुष, ब्रह्म।

१०६ खाला=मौसी। सीस=अहभाव। हाथ करि=हथेलीपर रख ले। पैसे =प्रविष्ट हो सकता है।

१०७. नीपजै=उत्पन्न होता है। हाटि=बाजार मे। सीस=शीश, अहभाव।

भगति दुहेली रांम की, नहिं कायर का कांम।
सीस उतारै हाथि करि, सो लेसी हरि नाम ॥ १०८ ॥

भगति दुहेली राम की, जैसि खाँडे की धार।
जे डोलै तो कटि पड़ै, नहीं तौ उतरै पार ॥ १०९ ॥

जे हार्या तौ हरि सवां, जे जीत्या तो डाव।
पारब्रह्म कूं सुवतां, जे सिर जाइ त जाव ॥ ११० ॥

काल कौ अंग

झूठे सुख कौं सुख कहै, मानत है मद मोद।
खलक चबीणां काल का, कुछ मुख मै कुछ गोद ॥ १११ ॥

दौं की दाधी लकड़ी, ठाड़ी करे पुकार।
मति बसि पड़ौं लुहार कै, जालै दूजी बार ॥ ११२ ॥

जो पहर्या सो फाटिसी, नाव धर्या सो जाइ।
कबीर सोई तत्त गहि, जौं गुरि दिया बताइ ॥ ११३ ॥

---

१०८. दुहेली=कठिन। सो=वह। लेसी=ले।

१०९. खाँडे=खड्ग। डोले=विचलित हो। नही=अविचलित रहने पर। पार=भवसागर के पार, मोक्ष।

११०. हार्या=हारा, पराजित हुआ। सवाँ=समान। डाव=दाँव, अभीप्ति लक्ष्य की प्राप्ति। सुवता=सेवा करते हुए।

१११. खलक=ससार। चबीणा=चबेणा, खाद्य। कुछ मुख मे=कुछ खाया जा चुका है, मृत्यु को प्राप्त हो चुका है। कुछ गोद=भोजपुर क्षेत्र की स्त्रियाँ चबेना आदि सामने आँचल की झोली-सी बनाकर उसमे रख लेती है, अतः चबेना=जो खाया जानेवाला है, आसन्न खाद्य।

११२. दौ=दावाग्नि। दाधी=दग्ध। ठाड़ी=खडी हुई। मति=कही ऐसा न हो कि। ब्रस=वश मे, अधीन। जालै=जलाये।

११३. पहर्या=पहिना है। फाटिसी=फटता है। नाव धर्या=जिसका नाम-करण हुआ है अर्थात् समस्त वस्तु या व्यक्ति। जाइ=मृत्यु को प्राप्त होता है।

पांणी केरा बुदबुदा, इसो हमारी जाति ।
एक दिनां छिप जांहिगे, तारे ज्यूं परभाति ॥ ११४ ॥

कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गये सब तार ।
जंत्र विचारा क्या करे, चलै बजावनहार ॥ ११५ ॥

कस्तुरियां मृग कौ अंग

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूंढ़ै बन मांहि ।
ऐसै घटि घटि रांम है, दुनियां देखै नांहि ॥ ११६ ॥

सो सांईं तन मै बसै, भ्रंम्यो न जांणै तास ।
कस्तूरी के मृग ज्यूं, फिरि फिरि सूंघै घास ॥ ११७ ॥

ज्यूं नैनूं मैं पूतली, त्यूं खालिक घट मांहि ।
मूरिख लोग न जांणही, बाहरि ढूंढण जांहि ॥ ११८ ॥

विद्या कौ अंग

निंदक नेड़ा राखिये, आंगणि कुटी बंधाइ ।
बिन सावण पाणी बिना, निरमल करै सुभाइ ॥ ११९ ॥

---

११४. इसी=ऐसी ।

११५. जत्र=शरीर रूपी यंत्र । तार=इन्द्रियाँ । बजावणहार=प्राण ।

११६. कस्तूरी=एक सुगधित द्रव्य जिसका उत्स श्याम मृग की नाभि से माना जाता है । कुण्डलि=नाभि के गोल आवर्त्त मे । मि० नाभी कुण्डर मलै समीरू । समुद्र भवर जस भँवै गम्भीरू—जायसी । घटि घटि=कण-कण मे ।

११७ भ्र म्यो=भ्रमवश ।

११८. पूतली=पुतली, तारा, दृष्टि शक्ति का केन्द्र । खालिक=सृष्टिकर्त्ता, ईश्वर । बाहरि=ससार मे, तीर्थों आदि मे ।

११९ नेडा=निकट । बँधाइ=बनाकर । सावण=साबुन ।

न्यंदक दूरि न कीजिये, दीजै आदर मांन।
निरमल तन मन सब करै, बकि बकि आँनहिं आँन॥ १२०॥

कबीर घास न नींदिये, जो पाऊं तलि होइ।
उड़ि पड़ै जब आंखि मै, खरा दुहेला होइ॥ १२१॥

---

१२०. बकि बकि=निरन्तर निन्दा करता हुआ।
१२१. नीदिये=उखाड़िये। पाऊँ=पाँव। खरा=अत्यत। दुहेला=कष्ट।

सबद्

१

दुलहनीं गावहु मगलचार।
हम घरि आये हो राजा राम भरतार ॥
तन रत करि मै मन रत करिहूँ पंचतत्त बराती।
रामदेव मोरै पांहुनै आये, मै जोबन मैं माती ॥
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा बेद उचार।
रामदेव संगि भांवरि लैहूँ, धंनि धंनि भाग हमार ॥
सुर तेतीसूं कौतिग आये, मुनियर सहस अठ्यासी।
कहैं कबीर हंम ब्याहि चले है, पुरिष एक अविनासी ॥

२

एक अचभा देखो रे भाई, ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई।
पहलै पूत पीछैं भई माइ, चेला कै गुर लागै पाइ ॥

---

१. दुलहनी=सौभाग्यवती स्त्रियाँ ईश्वर के प्रेम मे निमग्न जीवात्मा रूपी वधुएँ। मगलचार=वैवाहिक अनुष्ठान मे गाये जानेवाले मागलिक गीत। हम=हमारे, मेरे। भरतार=पति। रत=अनुरक्त। पचतत=क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर। पाहुनै=अतिथि, पति। जोबन=यौवन, प्रेम भाव का परिपाक। माती=मत्त। बेदी=वेदिका। उचार=उच्चारण करना, पाठ करना। भावरि=सात परिक्रमाएँ। सुर तेतीसूं कौतिग=तैंतीस करोड देवता। (डा० मुन्शीराम शर्मा ने कौतिग का अर्थ कौतुक करते हुए आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य तथा इन्द्र और प्रजापति को तैंतीस देवता माना है जब कि डा० भगीरथ मिश्र कौतिग का अर्थ कोटिक (करोड) करते हैं।)

२. सिंघ=सिंह, ज्ञान। गाई=गाय, इन्द्रियाँ। पूत=पुत्र, जीव। भई=हुई, उत्पन्न हुई। माइ=माता, माया। चेला=जीवात्मा, साधक। गुरु=शिक्षक,

जल की मछली तरवर ब्याई, पकड़ि बिलाई मुरगै खाई।
बैलहि डारि गूंनि घरि आई, कुत्ता कूं लै गई बिलाई॥
तलि करि साषा ऊपरि करि मूल, बहुत भाँति जड़ लागे फूल।
कहै कबीर या पद कौं बूझै, ताकू तीन्यूं त्रिभुवन सूझै॥

३

चरषा जिनि जरै।
कातौंगी हजरी का सूत, नणद के भइया की सौं॥
जलि जाई थलि ऊपजी आई नगर मै आप।
एक अचंभा देखिया, बिटिया जायौ बाप॥
बाबल मेरा ब्याह करि, बर मुउत्यम ले चाहि।
जब लग बर पावै नहीं, तब लग तूं ही ब्याहि॥
सुबधी कै घरि लुबधी आयौ, आन बहू कै भाइ।
चूल्है अगनि बताइ करि, फल सौं दीयौ ठठाइ॥
सब जगही मरि जाइयौ, एक बढ़इया जिनि मरै।
सब रांडनि कौ साथ, चरषा को धरै॥
कहै कबीर सो पंडित ग्याता, जो या पदहि बिचारै।
पहलै परचै गुर मिलै, तो पीछै सतगुर तारै॥

४

मन रे जागत रहिये भाई।
गाफिल होइ सत मति खोवै, चोर मुसै घर जाई॥

मार्गदर्शक। पाइ=पैर। मछली=कुण्डलिनी। तरवर=तरुवर, मेरुदण्ड। ब्याई=विवाहित हुई। बिलाई=बिल्ली, माया। मुरगै=साधक, जीव। बैलहि=बैल, शरीर। डारि=छोडकर। गूनि=बैलादि पर सामान भरने के लिए जो पलान डाला जाता है। कुत्ता=विषयासक्त पापी जीव। बिलाई=माया। तलि=नीचे की ओर। साषा=डाल। ऊपरि=ऊर्ध्व-मुखी। मूल=जड। जड=मनस्तत्त्व, चेतना शक्ति। तीन्यू=तीनो (जब त्रिभुवन कहा तो तीन्यू कहने की आवश्यकता नही थी)।

३ चरषा=शरीर। सूत=कर्म। नगर=ससार। बिटिया=माया। बाप=जीव। बढई=गुरु। राड=मायालिप्त जीवात्मा।

४. गाफिल=असावधान। यसत=अस्तित्व। चोर=काम क्रोध मद लोभ मोह। मुसै=चोरी कर लेगा। घर जाई=घर मे प्रविष्ट होकर, सेंध लगाकर।

षट चक्र की कनक कोठड़ी, बस्त भाव है सोई।
ताला कुंची कुलफ के लागे, उघड़त बार न होई॥
पंच पहरवा सोइ गये हैं, बसतै जागण लागी।
जुरा मरण व्यापै कुछ नांहीं, गगन मंडल लै लागी॥
करत विचार मनही मन उपजी, नाँ कहीं गया न आया।
कहै कबीर संसा सब छूटा, राँम रतन धन पाया॥

५

अपनै में रंगि आपनपौ जानूं।
जिहि रंगि जानि ताही कूं मांनूं॥
अभि अंतरि मन रंग समानां, लोग कहैं कबीर बौरानां।
रंग न चीन्हैं मूरखि लोई, जिहि रँगि रग रह्या सब कोई।
जे रंग कबहूँ न आवै न जाई, कहै कबीर तिहि रह्या समाई॥

६

झगरा एक निबेरो रांम, जे तुम्ह अपनै जन सूं काम।
ब्रह्मा बड़ा कि जिनि रू उपाया, बेद बड़ा कि जहां थै आया॥
यहु मन बड़ा कि जहां मन मानै, रांम बड़ा कि रांमहि जानै।
कहै कबीर हूँ खरा उदास, तीरथ बड़े कि हरि के दास॥

षट्चक्र=मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा नामक ६ चक्र। बस्त=वस्तु, वास्तविक शुद्ध चैतन्य। कुंची=कुंजी, चाभी। कुलफ=(अरबी कुफ्ल) ताला, यंत्र। उघडत=खुलने मे, उद्घाटित होने मे। बार=बिलब। पच पहरवा=पाँच प्रहरी, ज्ञानेन्द्रियाँ। बसतै=वास्तविक शुद्ध चैतन्य। जुरा=जरा, वृद्धावस्था। गगन मडल=ब्रह्मरध्र। लै=लय, तद्रूपता।

५. अपनै मैं=मैंने स्वय अपना। लोई=लोक, संसार।

६ झगरा=झगडा, दुविधा। निबेरो=दूर करो। जे=यदि। जन=भक्त। काम=प्रेम। जिनि=जिसने। रू=आत्मा। उपाया=उत्पन्न की है। जहाँ थै आया=जिससे प्राप्त हुआ। रामहिं जानै=राम को जाननेवाला, राम का भक्त। खरा=अत्यत।

७

पंडित बाद बदंते झूठा ।
रांम कह्यां दुनियां गति पावै, षांड कह्यां मुख मीठा ॥
पावक कह्यां पाव जे दाझै, जल कहि त्रिषा बुझाई ।
भोजन कह्या भूष जे भाजै, तौ सब कोई तिरि जाई ॥
नर कै साथि सूवा हरि बोलै, हरि परताप न जानै ।
जो कबहूं उड़ि जाइ जंगल मैं, बहुरि न सुरतै आनै ॥
साची प्रीति विषै माया सूं, हरि भगतनि सूं हासी ।
कहै कबीर प्रेम नहीं उपज्यौ, बांध्यौ, जमपुरि जासी ॥

८

हम न मरैं मरिहै संसारा, हम कूं मिल्या जियावनहारा ॥
अब न मरौं मरनैं मन मानां, तेई मूए जिनि राम न जांनां ।
साकत मरै संतन जीवै, भरि भरि राम रसाइन पीवै ॥
हरि मरिहै तो हमहूं मरिहैं, हरि न मरै हंम काहे कूं मरिहैं ।
कहै कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा ॥

---

७. वाद=दार्शनिक सिद्धान्त । बदतें=कहते हैं । षाड=शक्कर । जे=यदि । दाझै=जलते । त्रिषा=तृषा । भूष=भूख । तिरि जाई=तर जाने, उनका उद्धार हो जाना । सूवा=तोता । बहुरि=लौटकर । सुरतै=प्रेम, स्मरण । हरि भगतनि सू=हरि के भक्तो से । हासी=उपहास । जासी=जायेगा ।

८. हम=मैं (कबीर ने मैं के लिए प्राय: बहुवचनसूचक सर्वनाम हम का प्रयोग किया है) । अब न मरौ=अब मैं नही मर सकता क्योकि मृत्यु को मैंने स्वीकार कर लिया है । तेई=वे ही । मूए=मरे । जिनि=जिन्होने । साकत=शाक्त, शक्ति का उपासक , कबीर ने शाक्त को वैष्णव विरोधी के रूप मे वर्णित किया है । वे उसे सदैव दुराचारी, दुर्विनीत, दुर्व्यसनी, विवेकहीन, नीच व्यक्ति के रूप मे ही स्मरण करते है । कबीर का 'साकत' सुअर से भी बदतर है—'साकत से सूकर भला, आछा राखै गाँउ' । संभवत: मदिरा, मास, मैथुन आदि पच मकारो मे लीन रहनेवाले कौल साधक को ही कबीर ने 'साकत' कहा है । रसाइन=रसायन, सजीवनी । मन मनहि मिलावा=मन को मन से मिलाया, मन का मन से मिलन हुआ, अपने मन को परमात्मा मे तल्लीन किया ।

९

लोका जांनि न भूलौ भाई ।
खालिक खलक खलक में खालिक, सब घट रह्यौ समाई ॥
अला एकै नूर उपनाया, ताकी कैसी निंदा ।
ता नूर थै सब जग कीया, कौन भला कौन मंदा ॥
ता अला की गति नही जानीं, गुरि गुड़ दीया मींठा ।
कहै कबीर मै पूरा पाया, सब घटि साहिब दीठा ॥

१०

काहे री नलनीं तूं कुमिलांनीं,
तेरे ही नालि सरोबर पानीं ।
जल मै उतपति जल मै बास, जल मै नलनीं तोर निवास ॥
ना तलि तपति न ऊपरि आगि, तोर हेतु कहु कासनि लागि ।
कहै कबीर जे उदिक समान, ते नहीं मूए हंमारे जान ॥

११

बागड़ देस लूवन का घर है,
तहाँ जिनि जाइ दाझन का डर है ।
सब जग देखौ कोई न धीरा, परत धूरि सिरि कहत अबीरा ॥

---

९ लोका=ससार के लोगो । जानि=जानते-बूझते हुए । खालिक=(अरबी ख़ालिक) सृष्टिकर्त्ता, खलक (सृष्टि) को बनानेवाला । खलक=(अरबी खल्क) मानव जाति, सपूर्ण सृष्टि । अला=(अरबी अल्लाह) ईश्वर । नूर=ज्योति, रत्न । मंदा=बुरा । गुरि=सद्‌गुरु । गुड=ज्ञानोपदेश । पूरा=पूर्ण ब्रह्म । साहिब=स्वामी, ईश्वर । दीठा=दिखाई पडा ।

१०. नलिनी=कमलिनी, जीवात्मा का प्रतीक । नालि=मृणाल, कमलनाल, जड, सरोवर मे मृणाल पर्यन्त जल भार हुआ है । पानी=ब्रह्म, चेतना शक्ति, जीवनी शक्ति । तलि=तल, नीचे । तपति=तपता है । हेतु=प्रीति । कहु=कह, बता । कासनि=किससे । उदिक=जल । हमारे जान=मेरे मतानुसार ।

११ बागड देस=बाँगड क्षेत्र, वर्त्तमान हरियाणा जन पद । मैदानी होने के कारण

न तहाँ सरवर न तहाँ पांणी, न तहाँ सतगुर साधू बांणीं ।
न तहाँ कौकिल न तहाँ सूवा, ऊंचै चढ़ि चढ़ि हंसा मूवा ॥
देश मालवा गहर गंभीर, डग डग रोटी पग पग नीर ।
कहै कबीर घरहीं मन मांनां, गूँगे का गुड़ गूँगै जांनाँ ॥

१२

अवधू मेरा मन मतिवारा ।
उन्मनि चढ्या मगन रस पीवै, त्रिभवन भया उजियारा ॥
गुड़ करि ग्यान ध्यान करि महुवा, भव भाठी करि भारा ।
सुषमन नारी सहजि समांनी, पीवै पीवनहारा ॥
दोइ पुड़ जोड़ि चिगाई भाठी, चुया महा रस भारी ।
कांम क्रोध दोइ किया बलीता, छूटि गई संसारी ॥
सुंनि मंडल मै मंदला बाजै, तहां मेरा मन नाचै ।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमना काछै ॥
पूरा मिल्या तबै सुख उपज्यो, तन की तपति बुझानी ।
कहै कबीर भवबंधन छूटै, जोतिहि जोति समानी ॥

१३

हरि जननीं मैं बालिक तेरा,
काहे न औगुंण बकसहु मेरा ।
सुत अपराध करै दिन केते, जननीं कै चित रहैं न तेते ॥
कर गहि केस करै जो घाता, तऊ न हेत उतारै माता ।
कहै कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ॥

जहाँ लू के तीव्र थपेड़े चलते है। दाझन=दग्ध होने। मालवा=समतल भूमि का मालवा जनपद, भक्ति रस से पूरित देश।

१२ मतिवारा=विक्षिप्त। उन्मनि=उन्मनी अवस्था (दे० 'कबीरदास के काव्य मे प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली')। त्रिभवन=त्रिभुवन। महुवा=महुवा का फल जिससे देशी शराब बनती है। बलीता=पलीता। मँदला=मृदग, यहाँ अनहद नाद।

१३ बालिक=पुत्र। औगुंण=अवगुण। बकसहु=बख्श देती, क्षमा कर देती। केते=कितने। तेते=उतने। घाता=अघात करता है, मारता है। तऊ=तबभी। हेत=प्रीति। उतारे=कम करती। बुधि=बात।

१४

डगमग छाड़ि दु मन बौरा ।
अबं तौ जरें बरें बनि आवै, लीन्हौं हाथि सिंधोरा ।।
होइ निसक मगन ह्वै नाचै लोभ मोह भ्रम छाड़ै ।
सूरा कहा मरन तै डरपै, सती न संचै भाड़ै ।।
लोक बेद कुल की मरजादा इहै गले मै फांसी ।
आधा चलि करि पाछै फिरिहै होइ जगत मै हांसी ।।
यह संसार सकल है मैला रांम कहै सो सूचा ।
कहै कबीर नांउं नहि छांड़ौ, गिरत परत चढ़ि ऊँचा ।।

१५

बाबा अब न बसउ याहि गांउं ।
घरी घरी का लेखा मांगै, काइथ चेतू नांउं ।।
देही गांवां जिउधर महतौ, बसहिं पंच किरसांनां ।
नैनूं नकटू स्रवनूं रसनूं इंद्री कहा न मांनां ।।
धरमराइ जब लेखा मांगै बाकी निकसी भारी ।
पंच क्रिसनवा भागि गए लै बांध्यौ जिउ दरबारी ।।
कहै कबीर सुनहु रे संतहु खेतहिं करहु निबेरा ।
अब की बेर बखसि बंदे कौं बहुरि न भौजलि फेरा ।।

---

१४. डगमग=असमंजस, दुविधा । बौरा=बावला । बनि आवै=निर्वाह हो । सिंधौरा=सिन्दूर पात्र । सती स्त्रियाँ पति की चिता पर चढते समय सोलह श्रृंगार कर हाथ मे सौभाग्य का चिन्ह सिन्दूर पात्र लेती थी । सचै भाडै =बर्त्तन भाडे एकत्र नही करती । मैला=मलीन, भ्रष्ट । सूचा= सच्चा ।

१५. गाऊँ=गाँव, यहाँ शरीर का प्रतीक । लेखा=हिसाब किताब । काइथ= कायस्थ, मुनीम । चेतू=चित्रगुप्त, चित्त जो कायस्थ (काया मे स्थित) है । किरसाना=कृषक । नैनूं नकटू—पाँचो ज्ञानेन्द्रिओ को कबीर ने प्यार भरे नाम दिये हैं । धरमराइ=धर्मराज । बाकी=उधारी । निबेरा= निबटारा, निर्णय । बखसि=बख्शना, क्षमा करना । भौजलि=भवजल ।

१६

खालिक हरि कहीं दर हाल ।
पंजर जसि करद दुसमन, मुरद करि पैमाल॰॥
भिस्त हुसकां दो जगां, दुंदर दराज दिवाल ।
पहनाम परदा ईत आतस, जहर जंगम जाल ॥
हम रफत रह बरहु समां, मै खुर्दा सुमां बिसियार ।
हम जिमीं असमांन खालिक, गुंद मुसिकल कार ॥
असमांन म्याने लहंग दरिया, तहां गुसल करदा बूद ।
करि फिकर रह सालक जसम, जहाँ स तहां मौजूद ॥
हंम चु बूंदनि बूंद खालिक, गरक हम तुम पेस ।
कबीर पनह खुदाइ को, रह दिगर दावानेस ॥

१७

तुम्ह बिन रांम कवन सौं कहिये,
लागी चोट बहुत दुख सहिये ।
बध्यौ जीव बिरह कै भालै, राति दिवस मेरे उर सालै ॥
को जानैं मेरे तन की पीरा, सतगुर सबद बहि गयौ सरीरा ।
तुम्ह से बैद न हमसे रोगी, उपजी बिथा कैसें जीवैं बियोगी ॥
निस बासुरि मोहि चितवत जाई, अजहूँ न आइ मिले रांम राई ।
कहत कबीर हमकौं दुख भारी, बिन दरसन क्यूं जीवहि मुरारी ॥

१८

बाल्हा आव हमारे ग्रेह रे, तुम्ह बिन दुखिया देह रे ।
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोकौ इहै अदेहरे ॥

---

१६. खालिक=सृष्टिकर्त्ता, ईश्वर । हरि कही=हर कही, प्रत्येक स्थल मे । दर हाल=प्रत्येक स्थिति में । पजर=पिंजर, अस्थि ककाल । जस=जैसा, समान । करद=करता है । पैंमाल=(फारसी पामाल) पैरो से रौद कर, दुर्दशा ग्रस्त । भिस्त=बहिश्त, स्वर्ग । दोजगाँ=दोजख, नरक । दुन्दर=द्वन्द्व, कठिनाइयाँ ।

१७ सबद=उपदेश । बहि गयौ=चीर दिया है ।

१८. बाल्हा=बालम, पति । आब=आओ । सबको=सब कोई । अदेह=

एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे ॥
आन न भावै नींद न आवै, ग्रिह बन धरै न धीर रे।
ज्यूं कांमी कौ काम पियारा, ज्यूं प्यासे कूं नीर रे ॥
है कोई ऐसा पर उपगारी, हरि सूं कहै सुनाइ रे।
ऐसे हाल कबीर भये हैं, बिन देखे जीव जाइ रे ॥

१९

हरिजन हंस दसा लीये डोलै।
निर्मल नांव चवै जस बोलै ॥
मानसरोवर तट के बासी, राम चरन चित आंन उदासी।
मुकताहल बिन चंच न लांवै, मौंनि गहैं कै हरि गुन गांवै ॥
कऊवा कुबधि निकटि नहीं आवै, सो हंसा निज दरसन पावै।
कहै कबीर सोई जन तेरा, खीर नीर का करै नबेरा ॥

२०

चलि चलि रे भवरा कवल पास, भवरी बोलै अति उदास ॥
तै अनेक पुहप कौ लियौ भोग, सुख न भयौ तब बढ्यौ है रोग।
हौं ज कहत तोसूं बार बार, मै सब बन सोध्यौ डार डार ॥
दिनां चारि के सुरंग फूल, तिनहि देखि कहा रह्यो है भूल।
या बनासपती मै लागैगी आगि, तब तू जैहौ कहां भागि ॥
पहुप पुराने भये सूक, तब भंवरहि लागी अधिक भूख।
उड्यौ न जाइ बल गयौ है छूटि, तब भंवरही रूनी सीस कूटि ॥
दह दिसि जोवै मधुप राइ, तव भवरी ले चली सिर चढ़ाइ।
कहै कबीर मन कौ सुभाव, राम भगति बिन जम कौ डाव ॥

अदेशा, सन्देह। आन=अन्य व्यक्ति या अन्न, भोजन। ग्रिह बन=गृहवन, घर या बाहर। पर उपगारी=परोपकारी।

१९ हरिजन=ईश्वर के भक्त। आन=अन्य से। उदासी=विरक्त। मुकताहल=मोती। खीर नीर=क्षीर नीर, दूध और पानी। नबेरा=निवारण, निर्णय।

२०. सोध्यौ=शोध लिया है, खोज देखा है। रूनी=रोती है। डाव=दाँव।

२१

जतन बिन मृगनि खेत उजारे।
टारे टरत नहीं निस बासुरि, बिडरत नहीं बिडारे॥
अपनें अपनें रस के लोभी, करतब न्यारे न्यारे।
अति अभिमांन बदत नहीं काहू, बहुत लोग पचि हारे॥
बुधि मेरी किरषी, गुर मेरौ बिझुका, आखिर दोइ रखवारे।
कहै कबीर अब खान न देहूँ, बवरियां भली संभारे॥

---

२१. जतन बिन=यत्नाभाव मे, साधना के अभाव में। मृगनि=काम, क्रोधादि विषय रूपी पशुओ ने। खेत=जीवन। बिडरत=हटते, भागते नही है। बिडारे=भगाने पर, भयभीत करने पर। अपने अपने=रूपरस गध आदि के। करतब=कर्म, पद्धतियाँ। वदत नही काहू=किसी को कुछ नही समझते। पचि=थक कर। किरषी=कृषि, फसल। बिझुका=काक-भगौडा। आखिर दोई=दो अक्षर, राम। बरिया=बाड़, खेत की रक्षा के निमित्त काँटेदार झाडियो आदि से बनाया गया अवरोध, बेला, समय रहते।

ढेकुली
लेज
ढेकुली
ढोलनहार
कुआँ
रस (पानी)
रबाब
तीरकमान
खाँडा
सिकलीगर और उसका मसकला
दमामा
बिझूका
नौबत
दमामा
जोल
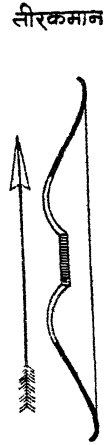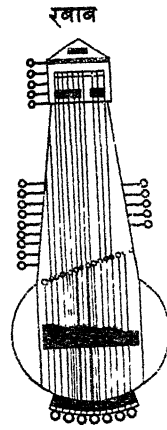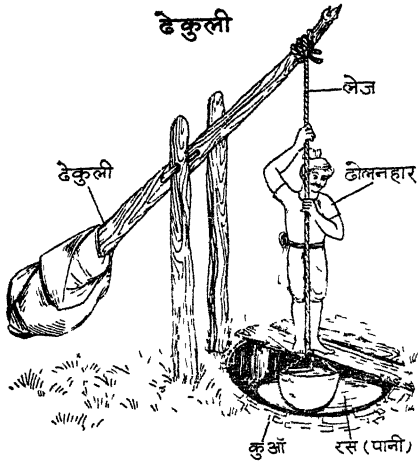
षट्चक्र
सहस्रार
आज्ञा
विशुद्धि
अनाहत
मणिपुर
स्वाधिष्ठान
मूलाधार
भाला
कुण्डलिनी
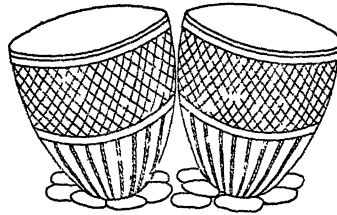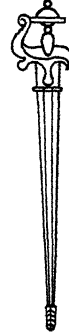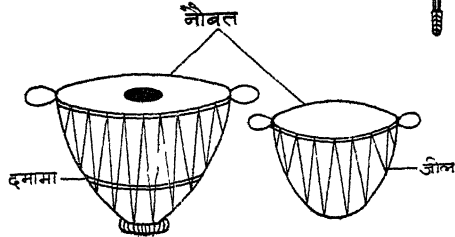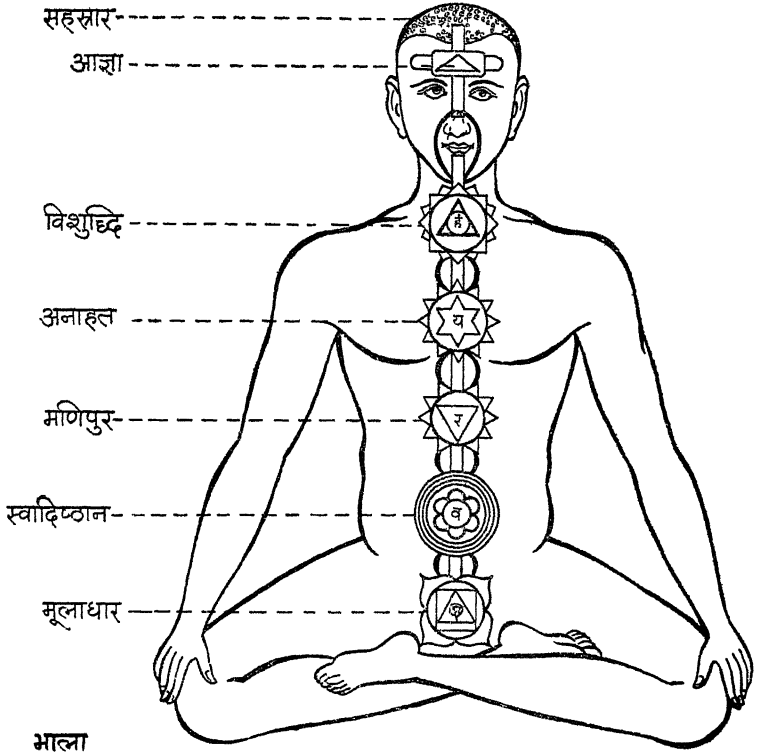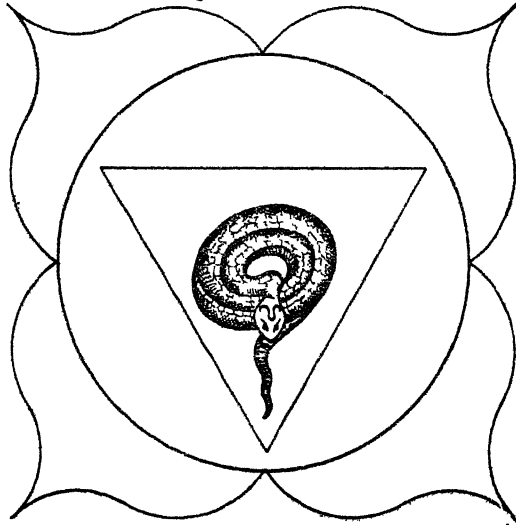
व्याख्या

साखी

१

सद्‌गुरु अनन्त महिमा सम्पन्न है। उन्होने मेरे ऊपर अगणित उपकार किये है। उनकी कृपा से मेरे अनन्त ज्ञानचक्षु खुल गये है। ये ज्ञानचक्षु अनन्त (परब्रह्म) का दर्शन कराने वाले सिद्ध हुए हैं।

विशेष : १. तुलसी ने भी गुरु कृपा से हृदय लोचन के खुलने की बात कही है—

श्री गुरु पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के।
मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥

२. यमक।

२

सद्‌गुरु ने मुझे राम नाम का जो प्रसाद दिया है उसके प्रतिदान स्वरूप मेरे पास उन्हे देने के लिए कुछ भी नही है। (क्योकि उस राम नाम के सम्मुख संसार की सारी वस्तुएँ हेय और नगण्य है)। मैं (निर्धन, रक) किस बूते पर गुरु को (दक्षिणा चुकाकर) सन्तुष्ट करूँ, यह लालसा मन की मन मे ही रह गयी (पूरी नही हो पायी)।

विशेष : १. समता के अर्थ मे अन्य स्थलो पर भी कबीर ने पटंतर का प्रयोग किया है—

तासु पटंतर नां तुलै, हरिजन की पनिहारि।

छत्तीसगढी और अवधी मे पटतर या पटतर शब्द 'बराबरी' के अर्थ में आज भी व्यवहृत होता है।

२ अपने मूल रूप मे हवस (फारसी) शब्द कामना और हौसला दोनों अर्थों मे प्रयुक्त होता है ।

३

मेरे सद्‌गुरु सच्चे वीर हैं । उन्होने मुझे शब्द (उपदेश) का बाण मारा । उस बाण के लगते ही मेरा अहकार नष्ट हो गया (अथवा वह बाण मेरे हृदय मे इस प्रकार चुभा कि दोनो एक हो गये) । उस बाण से मेरे हृदय मे घाव हो गया (जो निरतर मुझे ईश्वर का स्मरण कराता रहता है) ।

विशेष : १ गालिब ने भी बाण के हृदय के साथ तद्रूप होने की बात कही है—

कोई मेरे दिल से पूछे, तेरे तीरे नीम कश को ।
ये ख़लिश कहाँ से होती, जो जिगर के पार होता ।।

२. 'भुइ मिलि गया' पाठ भी मिलता है जिसका अर्थ होगा कि साधक बाण लगते ही भूलु ठित हो गया ।

३. 'छेक' का अर्थ दूरी भी है । तब इस चरण का अर्थ होगा—हृदय विषय-वासनाओ से दूर हो गया ।

४. साग रूपक ।

(तीर कमान का चित्र देखिए)

४

सद्‌गुरु ने मुझे ज्ञान रूपी ऐसा दीपक प्रदान किया है जिसमे भक्ति का तेल भरा हुआ है और जिसमे कभी छोटी न पडने वाली साधना रूपी बत्ती पडी हुई है । इस दीपक के सहारे मैंने इस संसार रूपी बाज़ार मे अपना क्रय-विक्रय पूरा कर लिया है (और सारा हिसाब-किताब बराबर कर लिया है) । अब मुझे लौटकर (अगले जन्म मे) इस संसार रूपी बाज़ार मे नही आना है ।

विशेष : १ .'बहुरि' का अर्थ 'फिर' नही है जैसा कि कई व्याख्याकारो ने किया है । 'बहुरि' का अर्थ होता है 'लौटना ।'

२. साग रूपक और रूपकातिशयोक्ति ।

५

गुरु की गरिमा और शिष्य की साधना तत्परता की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कबीर कहते हैं कि अन्धा गुरु और अन्धा शिष्य यदि दोनो एक साथ मिल जायें तो उनमे से किसी को भी सफलता नही मिल सकती क्योकि यदि अन्धा ही मार्ग

प्रदर्शक हो और अनुयायी भी अन्धा ही हो तो दोनो कुएँ मे गिरते हैं (सर्वनाश को प्राप्त होते हैं)।

६

चौंसठ कलाओ मे पारगत होने से अथवा चौदह विद्याओ मे दक्ष होने से कुछ नही होता। जिस घर मे ईश्वर का निवास नही है वहाँ कोई ज्योत्स्ना प्रस्फुटित नही होती (और अज्ञान का अन्धकार फैला रहता है)।

विशेष : १. चौसठ दीवा और चौदह चन्दा का प्रयोग कबीर ने प्रतीक के रूप मे किया है।

२. रूपकातिशयोक्ति।

७

यदि साधक का मन भ्रम पूरित है तो सद्गुरु के साक्षात्कार मात्र से कुछ लाभ नही होता। यदि कपड़े के ताने बाने जीर्ण-शीर्ण है तो मजीठे के रग से कपड़े की शोभा नही बढ सकती।

दूसरी पक्ति का यह अर्थ भी सम्भावित है कि जिस कपडे के ताने बाने जर्जर हो उससे अच्छा परिधान कैसे बन सकता है (अर्थात् नही बन सकता)।

कबीर ने इस साखी मे सद्गुरु के प्रभाव की सफलता के लिए निष्ठावान साधक को अनिवार्य बताया है।

विशेष : दृष्टान्त।

८

यह संसार एक चौरस्ते के समान है। इसमें जीवन रूपी चौपड़ का खेल चल रहा है। इसमे हारजीत होती ही रहती है (इसका भाव सदा एक सा नही रहता)। अत· कबीर राम के भक्तो से विचार पूर्वक चौपड का यह खेल खेलने का आग्रह करते हैं (ताकि उन्हे जीवन मे हारने का अवसर न आये)।

इस साखी का कायायोगपरक एक अन्य अर्थ भी हो सकता है :

त्रिकुटी के चौरस्ते पर साधना की चौपड बिछी हुई है। साधक इस साधना मार्ग मे सफल हुआ तो ब्रह्मरंध्र की ओर अग्रसर हो सकता है किन्तु विफल होने पर उसकी कुण्डलिनी पुनः मूलाधार चक्र की ओर लौट पड़ेगी। अतः साधना के मार्ग मे विचार पूर्वक प्रवृत्त होना आवश्यक है।

विशेष : रूपक।

९

ईश्वर के नाम का स्मरण ही वास्तविक भक्ति और भजन है। ईश्वर के नाम का स्मरण् छोडकर भक्ति और भजन के लिए जो भी अन्य उपाय किये जाते हैं वे अपार दु.ख के कारण है। अत. कबीर की स्पष्ट घोषणा है कि मन, वचन और कर्म से ईश्वर का स्मरण करना ही सारभूत है।

१०

कबीरदास कहते हैं कि प्रभु का नाम स्मरण ही तात्त्विक वस्तु है, शेष समस्त भक्ति पद्धतियाँ उलझाने वाली और दिग्भ्रष्ट करने वाली है। मैने ईश्वर भक्ति की समस्त पद्धतियो का सम्पूर्ण, आद्यन्त विश्लेषण किया है और मेरा निष्कर्ष है कि नाम-स्मरण को छोडकर शेष सभी उपाय विनाशकारी है (उनसे सिद्धि प्राप्त नही होती)।

११

कबीरदास को समाधि अवस्था प्राप्त हो गयी है (अथवा कबीरदास को कबीर (ईश्वर) की स्मृति उद्वेलित कर रही है)। उन्होने इस अवस्था मे ईश्वर रूपी रत्न को प्राप्त कर लिया है। फलत· उनका सम्पूर्ण अस्तित्त्व राममय हो गया है, उनकी समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ प्रियतम का नाम कीर्त्तन कर रही है और उनका मन भी उसी का स्मरण कर रहा है।

विशेष : 'पच सगी' बाह्य चेतना का और 'मन' आन्तरिक चेतना का द्योतक है।

१२

मैं मन से राम का स्मरण कर रहा हूँ। वस्तुत: राम कोई बाह्य सत्ता नही है, वह तो मेरा मन ही है। नाम स्मरण से मेरा मन साक्षात् राम हो गया है। अत: अब मैं किसे नमस्कार करूँ।

विशेष : यह भक्ति की चरम अवस्था है। साध्य, साधन और साधक की अभिन्नता महादेवी की इन पक्तियो मे भी व्यंजित हुई है—

बीन भी हूँ मै तुम्हारी रागिनी भी हूँ!

... ...

तार भी आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ!

१३

कबीरदास कहते हैं कि ईश्वर का नाम-स्मरण और जाप करते हुए वे ईश्वर के साथ तद्रूप हो गये और उनमे अहकार का भाव बिल्कुल भी शेष नही रहा। अब स्थिति यह हो गयी है कि वे जहाँ भी देखते है वही उन्हे ईश्वर के दर्शन होते है। नाम के इस प्रताप को देखकर कबीर बलि-बलि जाते है।

विशेष : १. मि० **लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।**
लाली देखन मैं गयी, मै भी हो गयी लाल॥ (कबीर)

२. सूफियो के यहाँ भी माना गया है—
जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है।

३. 'सर्व खल्विद ब्रह्म' से तुलनीय।

१४

कबीरदास कहते हैं कि तू मोह निद्रा मे पडा हुआ है। तुझे उठकर अपनी पीडादायिनी स्थिति को देखकर कातर होना चाहिए (तू असावधान और अज्ञान-ग्रस्त है इसी से निश्चिन्तता पूर्वक खर्राटे भर रहा है। वास्तविकता का पता लगते ही तू विलाप करने लगता)। कबीर साधक को प्रबोध देते हुए कहते है कि समाधि ही जिसका निवास स्थल हो अर्थात् जिसके जीवन का गतव्य मृत्यु हो वह सुख पूर्वक कैसे सो सकता है ?

१५

जो परम प्रिय राम (ब्रह्म) को छोडकर किसी अन्य देवता का जप करता है वह सत्य से अपरिचित रहता है। उसकी स्थिति उस वेश्या पुत्र के समान है जो अपने असली पिता को नही जानता और किसी को भी अपना पिता नही कह पाता (अतः पितृ स्नेह से वचित रहा आता है)।

विशेष : कबीर बहुदेव वाद के विरोधी थे। अत. राम को छोडकर अन्य देवताओ का स्मरण उनकी दृष्टि मे व्यभिचार है।

१६

ईश्वर का निवास अत्यन्त दूर है। उनके पास तक पहुँचने का जो मार्ग है वह लम्बा है (साधना मार्ग पर अविराम गति से चलकर दीर्घ अवधि के उपरान्त ही साधक को ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त होता है)। यह मार्ग भी अत्यन्त बीहड है (क्योकि साधना के मार्ग पर द्वैत, सशय, अज्ञान आदि का विक्षेप सम्भव है) और इस मार्ग पर लुटेरो की संख्या भी कम नही है (काम, क्रोध आदि लुटेरे साधको

देना ही है तो जीवन काल में ही दे दो। यदि तुमने मेरी मृत्यु के उपरात मुझ पर कृपा करने का विचार किया है तो वह मेरे लिए निरर्थक है। पारस पत्थर का प्रभाव लोहे पर तो पडता है, पत्थर पर नही। यदि लोहा कालक्रम मे पत्थर बन जाये तो वह पारस परस से बिल्कुल ही अप्रभावित रहा आयेगा।

विशेष : उर्दू कवियो ने भी इस प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं—

१. मिट गयीं सारी उमीदें, मिट गये सारे ख्याल।
बाद मरने के अगर, उनका पयाम आया तो क्या॥
२. हमने माना कि तग़ाफ़ुल न करोगे लेकिन।
हम खाक़ हो जायेंगे, तुमको खबर होने तक॥

२१

मेरे लिए ईश्वर का विरह इतना असह्य हो उठा है कि मन होता है कि इस शरीर को जलाकर कोयला बना डालूं ताकि स्वर्ग तक इसका धुआँ पहुँच सके। मेरे विरह के दाह का आभास पाकर हो सकता है कि राम कृपालु हो उठे और विरहाग्नि को बुझाने के लिए प्रेमजल की वर्षा करे।

२२

भक्त को प्रेम पीर मे ही आनन्द आता है अतः गुरुदेव से अनुरोध करते हुए कबीर कहते है कि तुमने कल मुझे जिस प्रेम बाण से बिद्ध किया था वह बाण मेरे हृदय को भा गया है। वैसा ही बाण आज तू फिर से मुझे मार क्योकि बिना प्रेम-वाणाहत हुए मुझे सुखानुभूति नही होती।

विशेष : रूपकातिशयोक्ति एव अनुज्ञा।

(तीर कमान का चित्र देखिए)

२३

वियोग रूपी सर्प ने शरीर मे स्थायी निवास बना लिया है। सामान्य सर्प तो मन्त्रोपचार से वश मे किये जा सकते हैं किन्तु वियोग का यह सर्प ऐसा है जिस पर कोई मन्त्र नही चलता। राम-वियुक्त प्रेमी जन का जीवित रहना असम्भव है। यदि वह किसी प्रकार जीवित रहा भी तो वह पागल हो जायेगा।

विशेष : रूपक।

२४

विरही साधक के शरीर की समस्त नाड़ियाँ रबाब की तन्त्रियो की भाँति

है और शरीर साक्षात् रबाब नामक वाद्य यन्त्र है। विरह रूपी वादक निरतर इन तन्त्रियो को झकृत कर रहा है। इस सगीत की विशेषता यह है कि इसे साधक चित्त और साध्य ईश्वर के अतिरिक्त और कोई सुनने मे सफल नही होता।

विशेष : १. जायसी ने भी वियोग मे नसो के तात बन जाने की बात कही है—

हाड़ भये सब किंगरी, नसें भईं सब ताँत।
रोम रोम से धुनि उठे, कहौं विथा किहि भाँत॥

२ वियोग मे साधक और साध्य की पीडा किसी तीसरे द्वारा अनुभूत नही होती। मीरा के शब्दो मे—

जौहरी की गति जौहरी जाने या जिनि लाई होय।

(रबाब का चित्र देखिए)

२५

प्रिय का पथ निहारते निहारते साधक की आँखे पथरा गयी और प्रियतम के नाम का जप करते करते उसकी जिह्वा मे छाले पड़ गये (किन्तु प्रिय इतना निर्मोही है कि उस पर कोई प्रभाव ही नही पडा)।

२६

मुझे प्रियतम के मुख का दर्शन लाभ हो सके इसके लिए मैं इस शरीर का दीपक बनाऊँगा और उसमे प्राणो की वर्त्तिका डालूँगा। इस वर्त्तिका को मेरे रक्त से स्नेह प्राप्त होगा अर्थात् मेरे रक्त के तेल से प्राणो की इस वर्त्तिका को जीवन रस मिलेगा।

विशेष : तेल के लिए 'लोहू' आदि का प्रयोग फारसी काव्य का प्रभाव है। भारतीय परम्परा मे शृगार के वर्णन मे हड्डियो, रक्त आदि का वर्णन निषिद्ध माना गया है।

२७

वियोग कातर कबीर ईश्वर से आग्रह पूर्वक कहते है कि रात-दिन का विरह-दाह अब मेरी सहन शक्ति की सीमा से बाहर हो गया है अत. ऐसी स्थिति मे या तो मेरी जीवन-लीला ही समाप्त कर दो या फिर अपना साक्षात्कार कराओ। तुम्हारे दर्शनो के बिना, विरह-वेदना-दग्ध जीवन की तुलना मे, मृत्यु ही मेरे लिए काम्य है।

२८

मेरी अन्तरात्मा में विरह की दावाग्नि प्रज्वलित है। इस दावाग्नि से धुआँ

नही निकलता (क्योकि यह अत्यन्त प्रखर है)। इस विरहाग्नि की अनुभूति या तो साधक को होती है (जिसके हृदय मे वह लगी हुई है) या साध्य को (जो उस अग्नि का कारण-स्वरूप है)।

विशेष : व्यतिरेक अलंकार ध्वनित है।

२९

माया से आक्रात शरीर रूपी जल मे ज्ञान रूपी अग्नि प्रज्वलित हो उठी है। इस अग्नि की ज्वाला मे विषय वासना रूपी कीचड भस्मीभूत हो उठा है। आग, पानी और कीचड का मर्म समझने के लिए चारो दिशाओ के सयाने लोग तर्क विचार मे सलग्न है (किन्तु किसी निष्कर्ष तक नही पहुँच पाये)।

विशेष : यह दोहा उलटवाँसी है। यहाँ जो क्रियाएँ सम्पन्न हो रही है वे लोक धर्म के विपरीत है क्योकि लोक मे पानी मे आग नही लगती और आग से कीचड भस्म नही होता।

३०

सद्गुरु रूपी आखेटक ने (विषयवासनाओ से युक्त ससार रूपी वन में) ज्ञान-रूपी अग्नि लगा दी है। इस अग्नि के प्रभाव से जीव रूपी मृग दाह का अनुभव कर रहा है। उसे यह लग रहा है कि मेरा क्रीडा क्षेत्र इस आग मे राख हो जायगा (तब मैं कहाँ आनन्द केलि करूँगा)।

विशेष : १. शिकारी जगल मे तीन ओर आग लगाकर पशुओ को भयभीत कर देते है और विशिष्ट दिशा मे भागने के लिए बाध्य करते है। जब वे चौथी तथाकथित सुरक्षित दिशा मे प्राणो की रक्षा के लिए भागते है तो वे उसे पकड लेते है।

२. अन्योक्ति।

३१

संसार रूपी समुद्र मे ज्ञान रूपी अग्नि लग गयी है जिससे विषय वासना और माया-मोह रूपी नदियाँ जलकर कोयले की भाँति निष्प्राण हो गयी हैं। इस आग की ज्वाला से केवल योगी ही अप्रभावित रहे है क्योकि वे मेरुदण्ड रूपी वृक्ष के ऊपर (सहस्रार मे) चढने में सफल हुए है। कबीर आत्म-प्रबोध देते हुए कहते है कि मेरे लिए भी अब सावधान होने का अवसर आ गया है अर्थात् मुझे भी 'रूषा' पर चढने की चेष्टा करनी चाहिए।

विशेष : १. यह उलटबाँसी है।

२. रूपकातिशयोक्ति और सांग रूपक ।

३. इस साखी की डॉ० भगवत्स्वरूप मिश्र ने ज्ञान परक और योग परक व्याख्या इस प्रकार की है—

ज्ञान परक व्याख्या—'इसमे समुद्र अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य है। नदियाँ इन्द्रियाँ है। मछली साधक जीव तथा 'रूषा चढ जाना' जागतिक बोध से ऊपर उठकर ब्रह्म में लीन हो जाना है। अन्त.करणावच्छिन्न व वृत्यात्मक ज्ञान रूपी जल की वाहक इन्द्रियाँ ही नदियाँ है। ज्ञानाग्नि के प्रज्वलित होने पर शुद्ध इन्द्रियातीत ज्ञान रह जाता है। अतः नदियो के जल जाने की कल्पना है।'

योग परक अर्थ—'मूलाधार चक्रस्थ कुण्ड मे चण्डाग्नि प्रज्वलित हो गयी है और उसके नाडियो मे प्रवाहित होने से इड़ा और पिंगला रूप नदियाँ जलकर भस्म हो गयी है। कुण्डली रूपी मछली-सुषुम्ना रूप वृक्ष से सहस्रार कमल पर पहुँच गयी है।'

(षट्चक्र का चित्र देखिए)

३२

कबीरदास कहते हैं कि मैं ससार की सीमाओ से अपना सम्बन्ध विच्छिन्न करके जब असीम परमात्मा की साधना में सफल हुआ तो मैं इसके साथ तद्रूप हो गया और आत्मा परमात्मा के साथ चिरन्तन भाव से एकाकार हो गयी। शून्य मण्डल के इस लोक मे ब्रह्म से साक्षात्कार करने की दशा मे मैंने देखा कि वहाँ सहस्र दल कमल निराधार प्रफुल्लित है। इस दृश्य को केवल ईश्वर का सच्चा साधक ही देख सकने मे समर्थ होता है।

विशेष : यह दोहा कबीर के साधना परक रहस्यवाद से सम्बद्ध है। साधक अपनी कुण्डलिनी को जागृत करके षट चक्रो को भेदता हुआ जब सहस्रार चक्र तक पहुँचता है तो उसे अपरिच्छिन्न ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। उसकी कुण्डलिनी स्थायी रूप से वही निवास करने लगती है और उसे पुनः सासारिक विषय वासनाओ से पराभूत होने का योग नही आता।

(षट्चक्र का चित्र देखिए)

३३

सामान्यतया मोती की उत्पत्ति सीपी से मानी जाती है। यह सीपी या तो समुद्र के सूक्ष्म बालुका कण को अपने गर्भ मे पालकर मोती का रूप प्रदान करती है या स्वाति कण को ग्रहण कर उसे मोती बना देती है। किन्तु कबीर जिस मोती की

चर्चा कर रहे हैं वह सामान्य मोती नही है। यह मोती परब्रह्म का है जो योगी के ब्रह्मरन्ध्र स्थित शून्य मण्डल के अभेद्य दुर्ग मे उत्पन्न होता है।

विशेष : १. यह साखी भी कबीर के साधना परक रहस्यवाद से सम्बद्ध है। इसमे कबीर ने साधनापरक प्रतीको का प्रयोग किया है।

२. विरोधाभास और व्यतिरेक।

३४

कबीरदास कहते है कि सद्‌गुरु द्वारा दिखाये गये मार्ग पर चलकर मैंने शरीर मे ही निराकार ईश्वर के दर्शन कर लिये है और योगियो के बीहड साधना मार्ग मे प्रवृत होकर मुझे अपना गन्तव्य प्राप्त हो गया है। कहने का आशय यह कि योग साधना के माध्यम से शरीर मे ही ईश्वर का साक्षात्कार सम्भव है। यह मार्ग गुरु कृपा से ही सम्भव हुआ है।

विशेष : विरोधाभास।

३५

कबीरदास आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धो मे ठीक वैसा ही अद्वैत मानते है जैसा तरल जल और ठोस बर्फ मे होता है। जिस प्रकार जल घनीभूत होकर हिम बन जाता है उसी प्रकार आत्मा भी परमात्मा का विशिष्ट स्वरूप है। और जिस प्रकार हिम तरल होकर पुनः जल के रूप मे पर्यवसित हो जाता है उसी प्रकार जीवात्मा भी मुक्त होकर ब्रह्म हो जाती है। कबीरदास कहते है कि आत्मा और परमात्मा का अन्तर केवल स्वरूप भेद के कारण है। आत्मा के परमात्मा बन जाने का मर्म शब्दातीत है।

विशेष : १ प्रसाद ने भी कामायनी मे जड और चेतन का,सम्बन्ध बताते हुए लिखा है—

ऊपर जल था नीचे हिम था
एक तरल था एक सघन
एक तत्त्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन ।

२. साग रूपक गर्भित अन्योक्ति।

३६

आत्मा और परमात्मा के मिलन क्षणो मे सुरति और निरति,जाप और अजाप तथा लेख और अलेख एकरूप हो जाते हैं। कबीरदास कहते हैं कि परमात्मा के साथ जब आत्मा का मिलन होता है तब इड़ा नाड़ी पिंगला नाडी के साथ मिल जाती

है और साधक के चित्त की शब्दोन्मुखी वृत्ति उसकी आन्तरिक वृत्ति के साथ एक हो जाती है। यह निरति की अवस्था सिद्ध और साधक के एक हो जाने से उत्पन्न हो जाती है। इस अवस्था मे साधक को मुखर जाप की आवश्यकता नही होती और वह मौन रूप से ही ईश्वर का ध्यान करने मे समर्थ होता है। ब्रह्म साक्षात्कार की इस अवस्था मे समस्त नाम रूपात्मक जगत निर्गुण निराकार अलेख ईश्वर मे समाविष्ट हो जाता है। इस अवस्था मे अहकार स्वरूप आत्मा भी विशुद्ध आत्म तत्त्व मे सम्पूर्ण-तया मिल जाती है। कहने का आशय यह कि पृथक अहकार के रूप मे प्रतीत होने वाली जीवात्मा अपने निर्व्याज निर्मल परमात्म रूप को प्राप्त हो जाती है।

३७

गगन मंडल स्थित मान सरोवर मे ज्ञान का पारदर्शी जल भरा हुआ है। जहाँ मुक्तात्मा साधक ब्रह्म के साथ केलिक्रीड़ा में निमग्न है। वह ब्रह्म रूपी मोती का आहार कर रहा है—अब उसे कही अन्यत्र जाने की इच्छा नही होती।

(षट्चक्र का चित्र देखिए)

३८

शून्य मडल मे अनहद नाद हो रहा है और वहाँ अमृत की वर्षा हो रही है। मेरुदण्ड रूपी केले के वृक्ष के ऊपर सहस्रदल कमल खिला हुआ है। कबीरदास इस सहस्रार चक्र में ईश्वर की भक्ति मे तल्लीन है। इस गतव्य तक या तो कबीर पहुँच सके है या ईश्वर का कोई सच्चा साधक ही पहुँच सकता है।

(षट्चक्र का चित्र देखिए)

३९

कबीरदास हठयोग साधना परक रहस्यवाद की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करते हुए कहते है कि गगनमडल मे अधोमुख कुँआ है। सामान्य कुओ से पानी भरने के लिए पनिहारिन को ऊपर की ओर खडा होना पड़ता है किन्तु इस कुँए से पानी भरने वाली पनिहारिन नीचे पाताल मे स्थित है। वह जो पानी भरती है उसे कोई मुक्तात्मा ही पी सकता है। इस मूल्य तत्त्व का रहस्य किसी असाधारण व्यक्ति को ही ज्ञात हो पाता है।

विशेष : इस साखी मे प्रयुक्त प्रतीको के अनेक अर्थ किये गये है। यथा—

साधनात्मक—यह एक उलटबाँसी है। इसमें कबीर ने हठयोग की साधना के पारिभाषिक शब्दो का प्रतीकवत प्रयोग किया है। 'आकासे' साधक का गगन मडल है, 'मुखि औधा कुवा' ब्रह्मरध्र है, 'पाताले' मेरुदण्ड के निचले सिरे पर स्थित मूला-

धार चक्र है और 'पनिहारिन' कुंडलिनी है, कोई 'हंसा' वह विशिष्ट साधक है जिसकी कुडलिनी जागृत है। इस रहस्य को 'विरले' संतजन ही जानते है।

ज्ञानात्मक—इन पंक्तियो मे मुक्त जीव की आनन्दाभूति व्यजित हुई है। ब्रह्मरंध्र जो कुँए के प्रतीक द्वारा अभिव्यक्त है आनन्द तत्त्व है। पनिहारिन अत.-करण की वृत्ति है जो आनन्द तत्त्व मे लीन होने के लिए प्रयत्नशील है। इस वृत्ति के ऊर्ध्वमुखी एव अतर्मुखी होने पर ही साधक को आनन्द का परिचय प्राप्त होता है। अहकार से मुक्त जीवात्मा ही हस है। यही हसात्मा ब्रह्मरंध्र स्थित आनन्द रस का पान कर सकता है।

मुद्रात्मक—इस साखी मे हठयोग की खेचरी मुद्रा की व्यजना है। ब्रह्मरध्र के चन्द्रस्थान से जो रस टपकता है उसका योगी जिह्वा को उलटकर पान करता है। इस खेचरी मुद्रा का साधक ही हस है। जिह्वा की उल्टी स्थिति पनिहारिन है, ब्रह्म-रध्र कुँए का मुख है और चन्द्र स्थान सक्षात् कूप है।

(षट्चक का चित्र देखिए)

४०

प्रभु भक्ति रूपी प्रेम मदिरा पीने मे अत्यन्त स्वादिष्ट लगती है। इस प्रेम रस की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, इसके प्रतिदान मे मदिरा विक्रेता सिरके मूल्य की माँग करता है।

विशेष : इस साखी मे कलाल सद्गुरु के लिए प्रयुक्त हुआ है और सीस अहकार के लिए।

४१

कबीर कहते है जिस प्रकार मदिरालय मे अनेक मद्यप मद्यपान की आकाक्षा से एकत्र होते है वैसे ही प्रभु की भक्ति प्राप्ति करने के उद्देश्य से अनेक जीव गुरु की शरण मे जाते है। जिस प्रकार मदिरालय मे उपस्थित हो जाने मात्र से मद्यप मदिरा प्राप्त करने का अधिकारी नही हो जाता उसी प्रकार जीव को ईश्वर योही नही मिल जाता। जो जीव अपना सर्वस्व (शीश रूपी अहंकार) छोड़ने को प्रस्तुत है वही प्रभु भक्ति का आस्वाद ले सकता है।

विशेष : साग रूपक।

४२

प्रभु भक्ति की तुलना एक सरोवर से करते हुए कबीर कहते हैं कि प्रभुप्रेम रूपी जल के अभाव मे जहाँ पहिले घड़ा भी नही डूब पाता था वही अब प्रभु भक्ति का

जल लबालब भर जाने से मतवाला हाथी मल-मल कर स्नान कर रहा है। यह मत-वाला हाथी साधक का अहकार है जो ईश्वर के प्रेम जल मे सपूर्णता डूब गया है। यह शरीर रूपी मदिर अपनी सम्पूर्ण निशिष्टता और अहभावना के साथ इस सरोवर मे निमग्न हो गया है। एक ओर तो इस सरोवर मे सच्चे साधक के लिए इतना अगाध जल है वही दूसरी ओर विषय वासनाओ मे लिप्त सासारिक मनुष्य के लिए इतना पानी भी नही है कि वहाँ चोच डुबोकर इन्द्रियाँ अपनी प्यास बुझा सके।

विशेष : रूपकातिशयोक्ति।

४३

इस भवसागर से मोक्ष प्राप्त करने के लिए मैने सारे उपायो का प्रयोग करके देख लिया। किन्तु ईश्वर भक्ति रूपी रसायन को छोड़कर शेष सारे उपाय सदिग्ध और अप्रामाणिक है। ईश्वर भक्ति रूपी रसायन का तो यह माहात्म्य है कि वह रचमात्र शरीर मे प्रविष्ट हो जाये तो सम्पूर्ण शरीर द्वादश वर्णी कुदन मे परिवर्तित हो जाता है। अर्थात् शेष सारी साधनाएँ हमे अपने गतव्य तक नही पहुँचाती जबकि प्रभु भक्ति का कणमात्र हमारे अतःकरण को निर्मल और शरीर को शुद्ध कर देता है।

विशेष : रूपक।

४४

प्रिय संधान के अनुभवो का बखान करते हुए कबीर कहते हैं कि प्रभु को खोजते-खोजते मैं स्वयं ही खो गया और मेरी स्थिति उस बूँद के समान हो गयी जो समुद्र से मिलकर स्वयं समुद्र बन जाती है और जिसका अपना पृथक् अस्तित्व निश्शेष हो जाता है।

विशेष : १. यहाँ बूँद आत्मा का और समुद्र परमात्मा का प्रतीक है
२. दृष्टात।

४५

प्रिय को मैं बाहर ढूँढता रहा किन्तु मेरी इस प्रक्रिया मे बाह्य जगत् मे कबीर (ईश्वर) मेरे लिए अलभ्य सिद्ध हुआ। वस्तुतः वह मेरे भीतर उसी प्रकार समा गया जैसे समुद्र अपने समस्त स्वरूप के साथ सूक्ष्म भाव से बूँद मे समाहित हो जाता है। अतः अब ईश्वर को बाहर कहाँ खोजा जाये जब वह भीतर ही विद्यमान है।

विशेष : १. उपर्युक्त दोनो सखियो मे जीव और ब्रह्म की अभिन्नता का प्रतिपादन किया गया है। जीव साधना के माध्यम से ब्रह्म स्वरूप हो जाता है और ब्रह्म अनुग्रह पूर्वक जीव के रूप मे स्वय को उद्घाटित करता है।
२. दृष्टांत।

४६

कबीर ईश्वर के शब्दातीत और इन्द्रियातीत स्वरूप के वर्णन का प्रयास करते हुए कहते हैं कि मैंने कभी ईश्वर का प्रत्यक्ष साक्षात्कार नही किया है अत. उसके सम्बध मे मैं नितात अज्ञानी हूँ। मैं ईश्वर को न तो भारी कह सकने की स्थिति मे हूँ और न हल्का क्योकि यदि मैं उसे भारी कहता हूँ तो यह डर है कि लोग उसे सगुण साकार समझ बैठेगे और यदि मैं उसे हल्का कहता हूँ तो ईश्वर के स्वरूप के संबध मे मिथ्या भाषण की आशका होती है। अर्थात् प्रभु हमारे किसी शब्द अथवा किसी इन्द्रिय सवेदन से नही जाने जा सकते।

विशेष : कबीर की ही भाँति भाषिक एव ऐन्द्रिक कठिनाई के कारण उपनिषदो ने ईश्वर को नेति-नेति (ऐसा नही, ऐसा नही) कहा था।

४७

कबीर ईश्वर का परिचय देने मे अपनी अक्षमता की घोषणा करते हुए कहते हैं कि यदि मैंने ईश्वर का दर्शन लाभ किया भी हो तो उसे व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नही है। फिर यदि मैं शब्दो मे ईश्वर के स्वरूप का बखान करूँ भी तो वह विश्वसनीय नही होगा। अत: ईश्वर के स्वरूप से अन्य को परिचित कराने का प्रयास ही व्यर्थ है। मन के लिए सर्वोत्तम यही है कि वह प्रसन्न भाव से, आल्हाद पूर्वक ईश्वर के गुणो का कीर्त्तन करे।

४८

हठयोग के पारिभाषिक शब्दो का व्यवहार करते हुए कबीर कहते हैं सहस्रार रूपी कुँए मे अमृत भरा हुआ है। साधक सुरति रूपी ढेकी के माध्यम से लय की रस्सी के सहारे इस कुँए से अमृत खीच रहा है। अमृत खीचने का कार्य मन कर रहा है। साधक निरतर इस अमृत का पान कर रहा है।

विशेष : १. ढेकली का प्रयोग उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ, बिहार आदि क्षेत्रो मे कुँए से पानी निकालने के लिए सामान्यतया किया जाता है।

२. साग रूपक।

(ढेंकुली का चित्र देखिए)

४९

गगा और यमुना के मध्य मे सहज शून्य क्षेत्र मे लय का घाट है। इस घाट

पर कबीर ने अपना मठ बनाया है। इस मठ तक पहुँचने के लिए मुनियो को बडी प्रतीक्षा करनी पडती है। हठयोग की शब्दावली का प्रयोग करने वाली इस साखी मे कबीर इडा और पिंगला नाडियो के बीच स्थित सुषुम्ना के शून्य शिखर पर साधक की समाधि लगने की चर्चा कर रहे है। यह दशा मुनियो को भी अलभ्य होती है।

(षटचक्र का चित्र देखिए)

५०

जिस प्रकार सौभाग्यवती अपनी माँग में सिन्दूर भरती है, वहाँ कालिख के लिए कोई स्थान नही होता उसी प्रकार कबीर कहते है कि मैंने अपनी आँखो मे राम को बसा रखा है, किसी अन्य देवता के लिए वहाँ स्थान ही कहाँ है। अर्थात् राम तो मेरे सौभाग्य के लक्षण हैं, अन्य देवता तो कलकवत है।

विशेष : दृष्टात।

५१

कबीर को प्रियतम का सान्निध्य सर्वाधिक प्रीतिकर है। अत: वे ईश्वर के दर्शन लाभ के लिए नरक का दु ख तक भोगने को प्रस्तुत है। जिस स्वर्ग मे प्रियतम न हो वह स्वर्ग भी कबीर के लिए त्याज्य है।

विशेष : १. इसी भाव को अहमद ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

कहा करौं बैकुंठ लै कल्पवृक्ष की छाँह।
अहमद ढाक सुहावने जहँ प्रियतम गलबांह॥

२. स्वर्ग से कबीर का आशय भोग-विलास से है और दोजख से कठोर जीवन चर्या से।

५२

प्रेम मे यह आशंका बराबर बनी रहती है कि प्रेमी स्वय को प्रियपात्र की प्रीति और विश्वास का भाजन सिद्ध कर पायेगा या नही। यह आशंका आत्म विश्वास की कमी के कारण नही बल्कि प्रिय की महत्ता की प्रतीति से उत्पन्न होती है। इसी कातरता और आतुरता को व्यक्त करते हुए कबीर कहते है कि मेरा मन सदेह के कारण काँप-काँप उठता है, मेरे पास प्रेम का वह रस भी नही है जो प्रिय को अनायास बाँध ले, मैं प्रिय को रिझाने के हावो भावो, नाज नखरो से भी अनभिज्ञ हूँ। जब प्रिय से मिलन होगा, तब पता नही, मैं उनसे किस प्रकार प्रेमालाप और केलि क्रीड़ा कर पाऊँगी।

५३

कबीर ईश्वर प्रेमी भक्तो को परामर्श देते हुए कहते है कि हे स्नेही जनो, आज तुम्हारे घर अतिथि बनकर परब्रह्म स्वय पधारे हैं। अब यह तुम्हारे आतिथ्य के ऊपर निर्भर करता है कि तुम उन्हे कितने दिनो तक अपना मेहमान बनाकर रख सकने मे सफल होते हो। अतिथि का स्वागत सत्कार षट्रस व्यजनो और प्रेम पूर्ण आराधना से करो ताकि वह चिरकाल के लिए तुम्हारे यहाँ से जाये ही नही।

विशेष : १. षट् रस से कबीर का सकेत पचेन्द्रियो और मन की सर्वथाभावेन भक्ति से है। षट् रसो मे मधुर, लवण, अम्ल, कटु, कषाय और तिक्त की गणना की जाती है।

२. बोलियो मे 'पाहुना' पति के लिए प्रयुक्त होता है।

५४

कबीरदास कहते है कि इस ससार मे अपने वैभव और ऐश्वर्य का प्रदर्शन सीमित समय के लिए ही सभव होता है। एक बार इस ससार से उठ जाने पर इस ससार के नगर और गलियो को देखने के लिए लौटकर कोई नही आ पाता।

५५

जिन राज प्रसादों में निरतर नाना प्रकार के वाद्य यत्र बजते रहते थे और घड़ी-घड़ी पर नयी-नयी राग-रागनियाँ छेडी जाती थी वे ही प्रसाद कालक्रम मे निर्जन हो गये हैं और वहाँ अब कौओ का बसेरा हो गया है।

विशेष : १. 'मदिर' से कबीर का आशय शरीर रूपी मदिर से भी हो सकता है। यही शरीर ससार के ऐश्वर्य भोग का माध्यम है। इस शरीर के प्राण-विहीन हो जाने पर वह कौओ द्वारा नोच-नोच कर खा लिया जाता है।

२. सुमित्रानन्दन पत ने असार ससार का परिचय इन शब्दो में दिया है—

आज गर्वोन्नत हर्म्य अपार,
रत्न दीपावली मंत्रोच्चार।
उलूको के कल नग्न विहार,
झिल्लियों की झनकार।

३. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी **'सिर पर बैठो काग आँख दोउ खात निकारत'** कह कर जीवन की क्षण भगुरता और मृत्यूपरात अशोभनीयता का चित्रण किया है।

४. समासोक्ति ।

(नौबत का चित्र देखिए)

५६

इस जीवन पर गर्व करना मिथ्या है । हमारे जीवन को मृत्यु बालो से पँकड कर खीच रही है । हमारी मृत्यु का भी कोई ठिकाना नही है—पता नही काल हमे कहाँ मारे—घर मे सब आत्मीय स्वजनो के बीच अथवा परदेश मे जहाँ अपना कोई नही होगा । कहने का आशय यह कि हमारा अधिकार न तो अपने जीवन पर है और न ही अपनी मृत्यु पर ।

५७

सेमल के फूल की बाह्य शोभा अत्यन्त मनोहारी होती है किन्तु भीतर से वह नीरस और निस्सार होता है । तोता उसे दाडिम समझकर चोच मारता है पर उसे मिलता क्या है ? रस विहीन निस्वाद रुई जो हवा मे उड जाती है । ससार भी सेमल के फूल के समान बाहर से आकर्षक किन्तु भीतर से निस्सार प्रकृति का है । मनुष्य को अपने क्षणभगुर जीवन-काल मे ससार के रंगमय आकर्षण मे भ्रमित नही होना चाहिए ।

विशेष : उपमा ।

५८

कबीरदास जीवन की उपमा द्वार से और अस्मिता की उपमा खभे से देते हुए कहते है कि इस खभे से प्रभुभक्ति और अहकार रूपी दो-दो हाथी नही बाँधे जा सकते । इनमे से एक का मोह छोडना ही होगा। यदि साधक को अहकार से मोह है तो उसे प्रियतम की प्राप्ति नही हो सकती और यदि वह प्रियतम को पाना चाहता है तो उसे अपने अहकार को तिलाजलि देनी ही होगी ।

विशेष : अर्थान्तरन्यास पुष्ट समासोक्ति एव रूपक ।

५९

कबीर उन जीवों को प्रताडित करते हुए कहते है कि जो अपना सारा समय रागरंग में (खान पान और परिधान की चारुता मे) व्यतीत करते है और जो ईश्वर के नाम-स्मरण के लिए समय नही निकाल पाते ऐसे व्यक्ति यमपाश मे बँधकर नरक जाने के लिए बाध्य होते है ।

६०

इस ससार मे कोई किसी का स्थायी सगा या सम्बन्धी नही है। ससार मे हमे जन्म देने का श्रेय जिन माता-पिता को है वे सयोग से ही हमारे माता पिता बन गये। जैसे नाटक मे विट नायक और नायिका का मिलन सयोगवश ही होता है उसी प्रकार मेरे माता पिता का मिलन भी सयोग जन्य ही है। मैं भी इस ससार मे यायावर ही हूँ। संसार मैं सारे पारिवारिकजन उसी प्रकार एक घर मे एकत्र होते हैं जैसे नौका के यात्री जो विभिन्न दिशाओ से आते है और जिनके गतव्य भी भिन्न-भिन्न होते है कुछ काल के लिए सयोगवश एकत्र हो जाते हैं।

विशेष : अनेक व्याख्याकारो ने बिड और बिड़ाणी का अर्थ विनष्ट होने वाला या वाली किया है। वस्तुतः विट सस्कृत का पारिभाषिक शब्द है। लपट और आवारा नायक को सस्कृत नाट्य शास्त्र मे विट कहा गया है। (दे० साहित्य दर्पण, पृ० ३, श्लोक ४५)

६१

मैं इस मन को प्रेम वाण से बेध कर घायल कर डालूँगा। ऐसा करने से अदृष्ट ईश्वर इन्द्रियगम्य हो उठेगा। यदि मैं ऐसा नही करता और अपने अहकार को सुरक्षित रखने का उद्योग करता हूँ तो मेरे लिए दु.खो की अँगीठी का निर्माण स्वयमेव हो जायेगा।

विशेष : सभंगपद यमक।

६२

मैंने मन को अपना अंतरंग सखा बनाया है। यह मन आकंठ लाल रग के चोगे से आवृत है। यह लाल रग का चोगा प्रेम का प्रतीक है। अर्थात् मेरा मन प्रेम-मण्डित है। प्रेम का यह रग इतना पक्का है कि ससार के सारे धोबी (सारे आकर्षण) लाख प्रयास करने पर भी इसे मिटा नही सकते।

विशेष : रूपकातिशयोक्ति।

६३

कबीर मन की निरुद्ध एव वशीकृत अवस्था का विवरण देते हुए करते हैं कि मैंने उस मन को अपने अनुकूल बना लिया है जो जल से अधिक पतला, धुएँ से अधिक झीना और पवन गति से अधिक वेगवान है। अर्थात् चचल मन अब मेरा वशानुवर्त्ती है और उस पर मेरा पूरा अधिकार है।

६४

असावधान मन को प्रताडित करते हुए कबीर कहते हैं कि सासारिक विषय-वासनाओ के आकर्षण के कारण मेरा मन अपने कर्त्तव्य से डिग गया है और अब वह हरि स्मरण मे प्रवृत्त नही होता। इस मन को यह जान लेना चाहिए कि यम के दरबार मे उसे कठोर दण्ड सहना पडेगा।

विशेष : १ फारसी मे दरगाह शब्द का प्रयोग किसी सिद्ध पुरुष के समाधिस्थान के अतिरिक्त दरबार या कचहरी के अर्थ मे भी होता है। इस शब्द का यहाँ यही अभिप्रेत है।

२ घणी शब्द का राजस्थानी मे 'अत्यधिक' अर्थ होता है।

६५

भक्ति का द्वार अत्यत सूक्ष्म है। वह राई के दसवे भाग के बराबर हो तो हो। ऐसे सूक्ष्म और सकीर्ण मार्ग से कामग्रस्त मतवाले हाथी के समान अहकारी मन कैसे गुज़र सकता है ? अर्थात् भक्ति का मार्ग केवल उन्ही के लिए सुगम है जो अपने मन को वासना और अहंकार विहीन बना सकें।

६६

कबीर कहते हैं कि ब्रह्म-प्राप्ति का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। वहाँ पहुँचना किसी के लिए सम्भव नही है जो वहाँ पहुँच जाता है। वह वापिस लौटकर नही आता। अतः उस पथ का विवरण कौन दे ?

विशेष : दिल्ली को साधना मार्ग का गतव्य बताते हुए जायसी ने भी 'पदमावत' मे लिखा है—

सो दिल्ली अस निबुहर देसू। कोई न बहुरा कहै संदेसू।
जो गवनै सो तहाँ का होई। जो आवै किछु जान न सोई॥

६७

सत कबीरदास कहते है कि मेरा घर शून्य शिखर मे स्थित है। इस घर (ब्रह्म मण्डल) तक पहुँचने का मार्ग फिसलन से भरा हुआ और बीहड है। साधक कुण्डलिनी को जागृत करके ही उस गतव्य तक पहुँच सकता है किन्तु नाड़ी जल के कारण कुण्डलिनी का यह पथ पिच्छल है। साथ ही इसके बीच-बीच मे चक्र रूपी अनेक पर्वत भी विद्यमान हैं। ऐसे दुर्गम और फिसलन भरे मार्ग पर चीटी (सूक्ष्म साधक जो सम्पूर्ण वासनाओ और अहवृत्ति का परित्याग कर चीटी के समान सावधान और

मंथर गति से आगे बढते है) भी स्थिर भाव से नही चल पाती तब उन साधको की क्या गति होगी जो मन रूपी बैल को विषम वासनाओ से लाद कर शून्य शिखर तक पहुँचने की कामना करते है, यह आसानी से समझा जा सकता है।

विशेष : १ साधना परक रहस्यवाद का दोहा।

२. सागरूपक।

(षट्चक्र का चित्र देखिए)

६८

कबीर माया को पाप स्वरूपा घोषित करते हुए कहते हैं कि वह साधको से ईश्वर के प्रति विश्वासघात करवाती है। इस माया के मुँह मे दुर्बुद्धि की लगाम पड़ी हुई है अत वह साधक को जिस ओर खीचती है वह बेचारा उस ओर चलने के लिए बाध्य होता है। माया की वशानुवर्त्तिता के कारण वह राम-नाम का उच्चारण नही कर पाता।

६९

कबीरदास कहते है कि प्रत्यक्षतः—ऊपर-ऊपर से—तो यह लगता है कि साधक ईश्वराराधन मे तल्लीन है किन्तु उसके मन मे बहुत-सी विषयवासनाएँ भरी होती है। माया के इस विश्वासघात के कारण मन और ईश्वर के बीच मे अतराय उत्पन्न हो जाता है।

७०

सामान्य आग तो जलसिंचन से बुझ जाती है किन्तु विषयवासनाओ की तृष्णा रूपी अग्नि का स्वरूप ऐसा है जो सीचने से बुझने के स्थान पर दिन प्रतिदिन और प्रखर होता जाता है। इस तृष्णाग्नि को यदि नष्ट करना हो तो ईश्वर की अजस्र भक्ति का मेघ जल चाहिए। जैसे वर्षा के जल से जवासा नामक वनस्पति सूख जाती है वैसे ही तृष्णा भी ईश्वरभक्ति के जल से ही निश्शेष हो सकती है।

विशेष : १. विरोधाभास, उपमागर्भित रूपक।

२. आक और जवासा गर्मी में हरे-भरे रहते है किन्तु वर्षा ऋतु मे सूख जाते है।

७१

तीतर के पंखो के से रगवाले बादलो के लिए यह कहा जाता है कि वे बिना बरसे नही रहते। सत, रज, तम से युक्त माया को कबीर तीतरबानी घटा कहते हैं

जो अपना प्रभाव दिखाये बिना मानती ही नही । जो इस माया मेघ के प्रभाव क्षेत्र से स्वय को बाहर रखने मे सफल होते है वे तो मुक्त हो जाते है किन्तु जो शारीरिक वासनाओ मे फँसे रहते है वे नष्ट होने से बच नही पाते और माया उनको अपने प्रभाव क्षेत्र मे ले ही लेती है ।

विशेष : १ विरोधाभास और साग रूपक ।

२ तीतर बानी बादलो के सम्बन्ध मे लोक मे यह विश्वास प्रचलित है—

तीतर बानी बादली, विधवा काजर रेख ।
यह बरसै, वह घर करै, यामें मीन न मेख ।।

७२

दूसरो का सेवक बनने की तुलना मे अपना स्वामी बनना अपेक्षाकृत सरल है क्योकि स्वामी को उतने आत्म सयम और त्याग का परिचय नही देना पडता जितना कि सेवक से अपेक्षित होता है । इस स्थिति को उदाहृत करते हुए कबीर कहते है कि भेड परावलबी होती है, उसके जीवन की सार्थकता दूसरो के लिए ऊन जुटाना है । यदि यह भेड ऊन तो दे नही और बँधी-बँधी स्वामी का माल खा जाये तो उसके जीवन की महत्ता ही क्या रही ।

विशेष : इस साखी का पाठ भेद इस प्रकार है—

स्वामी होना सहज है, दुर्लभ होना दास ।
गाडर लावे ऊन को, लागी चरन कपास ।

७३

मुक्ति प्राप्त करने का एकमात्र प्रामाणिक मार्ग है ईश्वर का नामकीर्त्तन । जो साधक नाम स्मरण को छोडकर तीर्थ आदि मे विश्वास करता है और गगा जल का पान कर स्वय को शुद्ध करने का दभ करता है उसे मुक्ति नही मिलती ।

७४

कबीर पुस्तकीय ज्ञान की निस्सारता का उद्घोष करते हुए कहते है कि पढना व्यर्थ है, साधक को पोथियो को तिलाजलि दे देनी चाहिए । सम्पूर्ण लिखित ज्ञान का (उस ज्ञान का जो ककहरा के माध्यम से लिपिब्द्ध है) सार केवल 'रा' और 'म' अक्षरो में है । अतः साधक को केवल राम का ही मनन करना चाहिए ।

७५

जीवन भर के श्रम से उपलब्ध पुस्तकीय ज्ञान निस्सार है, उसमे किसी को

पडित बनाने की क्षमता नही है। सच्चा पडित तो वह है जिसने प्रिय को पा लिया है। उसने मर्म का साक्षात्कार कर लिया है।

७६

तीनो लोको मे कामिनी काली नागिन की भाँति विषाक्त होती है। यह काली नागिन ससार भर के विषय-लपटो को आमूल निश्शेष कर देती है, इसके प्रभाव से केवल राम भक्त ही बच पाते है।

विशेष : रूपक।

७७

जो मनुष्य नारी के मोह पाश मे बँध जाता है उसके तीनो सुख-भक्ति से प्राप्त होने वाला सुख, मुक्ति से मिलने वाला सुख और आत्म साक्षात्कार जन्य सुख—नष्ट हो जाते है। कोई भी नारीलुब्ध व्यक्ति इन तीनो सुखो का परिचय भी नही प्राप्त कर सकता।

७८

लगता है स्वर्ण और सुन्दरी दोनो का जन्म विषफल से हुआ है। विषफल को तो खाना घातक होता है, कनक और कामिनी के तो दर्शन मात्र सत्यानाशी सिद्ध होते है।

७९

सुदरी के संसर्ग से फाँसी पर चढ जाना अच्छा है। सुन्दरी के मारक प्रभाव से कोई भी नही बच पाता। जैसे अग्नि के दाह से दृढ लोहा भी भस्म हो जाता है वैसे ही बड़े-बड़े संयमी नारी के समुख अपना सयम खो बैठते है।

विशेष : दृष्टात।

८०

यदि हमने अपने जीवन काल मे मन वचन और कर्म की सत्यता निभायी है तो मृत्यु के बाद ईश्वर के समुख अपने कार्यो का लेखा-जोखा प्रस्तुत करना सरल होगा। ईश्वर के उस श्रेष्ठ दरबार मे कोई हम पर आरोप नही लगा पायेगा और किसी मे हमारा दामन पकडने का साहस नही होगा।

विशेष : १. रूपकातिशयोक्ति।

२. सांग रूपक।

८१

जिह्वा सयम का उपदेश देते हुए कबीर कहते है कि वह खिचडी जिसमे जरा-सा नमक पडा हो सच्चे साधक के लिए परम तृप्तिदायिनी होती है । जो साधक पेडा रोटी आदि स्वादिष्ट व्यजनो के लिए लालायित होगा उसे मरणोपरान्त दण्ड का भागी बनना पड़ेगा ।

८२

कबीरदास कहते है कि सद्‌गुरु की कृपा से मेरे सिर से अंधविश्वासो का बोझ उतर गया । यदि सद्‌गुरु की कृपा न होती तो मै भी मूर्ति पूजा जैसे निरर्थक कर्मो मे लीन रहा आता और जगल के पशुओ के समान जड अस्तित्व का भागी होता ।

८३

सिद्धो की इस मान्यता का प्रतिपादन करते हुए कि जो कुछ ब्रह्माण्ड मे है वह सब पिण्ड मे भी है कबीर कहते हैं कि सच्चे साधक के लिए मथुरा उसके मन मे होती है, द्वारिका उसके हृदय मे । उसका सारा शरीर ही मानो वाराणसी तीर्थ है । ऐसा सिद्ध साधक किसी देवालय में नही जाता, उसे ब्रह्मरध्र मे ही देवालय की प्रतीति होती है और वह वही निरजन ज्योति के रूप मे ब्रह्म का परिचय प्राप्त करता है ।

विशेष : रूपक और अनुक्रम ।

(षट्‌चक्र का चित्र देखिए)

८४

काठ के गुरियो की माला साधक को प्रबोध देती हुई कहती है कि यदि तूने विषयवासनाओ से स्वय को विमुख नही किया तो-ऊपर ऊपर से भक्ति का ढोग करने से कोई लाभ नही होगा ।

विशेष : इस साखी से निम्न साखी तुलनीय है—

माला फेरत जुग भया, फिर न मन का फेर ।
मनका मनका छाँड़ि कै, मनका मनका फेर ।

८५

बाह्योपचारो की निरर्थकता प्रतिपादित करते हुए कबीर कहते हैं कि सिर मुडा लेने मात्र से जीव को सुगति प्राप्त नही हो सकती । वास्तव मे उपचार तो मन का करना चाहिए जो विषय वासनाओ का भण्डार है ।

८६

शरीर को बाह्याडबरो के माध्यम से योगीवत बना लेना सब के लिए सुकर है किन्तु समस्त सासारिक आकर्षणो से मन को विमुख कर मन से योग साधना दुष्कर कार्य है। यदि मन योगी बन जाये तो ईश्वर का साक्षात्कार सहज सम्भव हो जाये।

८७

प्रियतम मन का मूल्य आँकते है, उनके लिए बाह्य प्रदर्शन का कोई मूल्य नही है। नारी सोलह श्रृगार कर ले पर मन को चटुल-चचल बना रहने दे तो वह प्रिय को आकर्षित करने मे सफल नही हो सकती। केश सज्जा, श्रृगार पटार व्यर्थ ही है। प्रिय को रिझाने के लिए निष्कलुष मन ही एक मात्र शर्त है।

८८

अविवेकी और जड व्यक्ति का साथ हानिकारक होता है। जैसे लोहा पानी मे डूब जाता है वैसे ही मूर्ख व्यक्ति भी संसार सागर में डूब जाता है। जो साधक मूर्ख का साथ पकडेगा उसकी साधना खडित होगी क्योकि सग का प्रभाव पडना अवश्यम्भावी है। स्वाति का जल मूलत· तो एक है किन्तु केले, सीपी और सर्प के ससर्ग से उसका परिणाम बदल जाता है। इसी प्रकार मूर्ख के ससर्ग मे पडकर स्वाति जल जैसा निर्मल साधक मे अपना मूल गुण छोडकर कदर्थ बन जायेगा।
विशेष : दृष्टात और क्रम।

८९

कुसगति सदा विनाशकारी होती है। बेर के समीप रहने वाला केले का झाड़ निरतर क्लेश पाता है क्योकि बेर मे हलचल होती है और केले के पत्ते विदीर्ण होते हैं। कबीरदास शाक्तो की सगति को उसी प्रकार त्याज्य मानते हैं जैसे बेर की सगति केले के लिए त्याज्य होनी चाहिए।

९०

आत्मा रूपी मक्खी माया रूपी गुड से चिपक गयी है। जिस प्रकार मक्खी के पंखों मे गुड लग जाने से वह उड़ सकने मे असमर्थ हो जाती है वैसे ही आत्मा माया के बधनो का निवारण कर मोक्ष लाभ नही कर पाती। माया ने आत्मा के लिए ऐसा प्रबल आकर्षण उत्पन्न किया है कि आत्मा उल्लासपूर्वक या खेद के साथ कितने ही प्रयास क्यो न करे माया के पाश से छूट नही पाती।
विशेष : रूपक।

६१

जन्मना कुलाभिमान करने वालो को प्रताडित करते हुए कबीर कहते हैं कि उच्चकुलाभिमान व्यर्थ है, वास्तविक वस्तु है उच्चाशय कर्म। स्वर्ण पात्र मे भरी होने से ही मदिरा सम्माननीय या उदात्त नही बन जाती, संत तो उसे त्याज्य ही मानते है। वैसे ही नीच कर्म करने वाला उच्चकुलोत्पन्न व्यक्ति भी तिरस्करणीय ही सिद्ध होगा।

विशेष : १ महाभारत के कर्ण ने भी कुलाभिमान को चुनौती देते हुए कहा था—

सूतोवा सूत पुत्रोवा, योवा कोवा भवाम्यहम् ।
दैवायत्तं कुले जन्मत्तं, मदात्तं तु पौरुषम् ।

२. दृष्टात।

६२

जीवन का वही दिन स्मरणीय और श्रेष्ठ है जिस दिन साधुओ की संगति सुलभ हो। उनके प्रेमालिगन से शरीर के समस्त पाप विकार दूर हो जाते हैं।

६३

संतो के लक्षण गिनाते हुए कबीरदास कहते हैं कि जिसमे सबसे मित्र भाव हो, जो निष्काम हो, जिसका मन ईश्वर की भक्ति से आप्लावित हो और जो विषय वासनाओ से उदासीन हो, वही सत है ।

६४

ईश्वर के भक्त को पहिचानने मे कठिनाई नही होती। वह दूर से ही परिलक्षित होता है। उसका शरीर क्षीण और मन विरक्त होता है और वह ससार से उदासीन होता हैं।

विशेष : उन्मन पारिभाषिक शब्द है। मन की ऊर्ध्वगति से आशय है।

६५

कर्म की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कबीर कहते है कि ईश्वर की प्राप्ति के लिए वैराग्य अनिवार्य नही है। हम गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए, सासारिक उत्तरदायित्वो का निर्वाह करते हुए भी राम को प्राप्त कर सकते है। अपने प्रस्तुत कथन की साक्षी के लिए कबीर शुकदेव को उद्धृत करते हैं।

विशेष : कबीर सामान्यतया आप्त प्रमाण के विरोधी हैं किन्तु अपनी वाणी की

आर्षता सिद्ध करने के लिए उन्होने वैष्णव गुरुओ और ऋषियो को प्रमाण स्वरूप उपस्थित किया है ।

६६

कबीरदास कहते है कि मैं आँखे खोलकर ईश्वर भक्त के सधान के लिए चतुर्दिक घूम रहा हूँ किन्तु मुझे एक भी ईश्वर भक्त नही मिला । कबीर कहते हैं कि मेरी असफलता का कारण मेरा दृष्टि दोष नही है अपितु ईश्वर भक्त की अनुपस्थिति ही है । जिस व्यक्ति के भीतर ईश्वर का निवास होगा वह दृष्टि से ओझल रह ही नही सकता ।

६७

वैष्णवो और शाक्तो के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कबीर वैष्णवो की सामान्य कुटिया को शाक्तो के समृद्ध गाँव से उसी प्रकार श्लाघ्य घोषित करते है जिस प्रकार काँटो वाले बबूल के वन की तुलना मे चदन का तनिक-सा चूर्ण ही श्रेयस्कर होता है ।

विशेष : १ कबीर ने स्थान-स्थान पर शाक्तो के प्रति घृणा व्यक्त की है और वैष्णवो की भूरि-भूरि प्रशसा की है यथा—

साषत बांभण मति मिलै, बैसनौं मिलै चण्डाल ।
अंक माल दे भेटिये, मानो मिलै गोपाल ॥

२ दृष्टान्त ।

६८

ईश्वर और भक्त के सम्बन्धो का विज्ञापन करते हुए कबीरदास कहते हैं कि ईश्वर केतकी पुष्प के समान है जिसके चारो ओर उसके भक्त भ्रमरो के समान मँड-राया करते हैं । यही नही, भगवान को भी भक्तो का ध्यान रहता है और जहाँ-जहाँ भक्ति की इयत्ता होती है वहाँ ईश्वर भी निवास करता है ।

विशेष : रूपक ।

६६

मध्यम मार्ग को अपना लक्ष्य घोषित करते हुए कबीर कहते है कि मैंने अपना विश्राम स्थल ऐसी जगह बनाया है जहाँ न तो दिन मे किसी प्रकार की चिन्ता व्यापती

है और न रात्रि मे ही। वहाँ स्वप्न में भी दु.ख की अनुभूति नही होती है। वह ऐसा स्थल है जो धूप और छाया से भी अप्रभावित रहा आता है।

विशेष . इस साखी मे प्रयुक्त 'गम' शब्द का अर्थ गमन या पहुँच करने पर इसका अर्थ होगा—

कबीर 'मधि' की अवस्था मे रम रहे है। यह मधि की दशा ऐसी है जहाँ न उजेले की पहुँच है और न अँधेरे की। वहाँ स्वप्न की सकल्प-विकल्पात्मक अनुभूतियाँ भी नही पहुँच पाती। यह दशा शीतलता और ताप से भी परे है। अर्थात् कबीर जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्थाओ से उठकर तुरीय की अवस्था मे पहुँच गये है।

१००

राम को ही एक मात्र ईश्वर मानने वाले उसी प्रकार भ्रमित है जिस प्रकार खुदा को एकमात्र ईश्वर मानने वाले। हिन्दू और मुसलमान दोनो अपने पूर्वाग्रहो के कारण सत्य का संधान नही कर सकते और नष्ट हो जाते है। जो राम और खुदा के द्वैत मे (या दुविधा मे) नही पड़ता वही अपने प्राणो को अक्षुण्ण रख पाता है।

विशेष : गाधीजी का प्रार्थना मे इसी द्वैत भाव को मिटाने का प्रबल आग्रह दिखाई पड़ता है—

ईश्वर अल्ला तेरे नाम।
सबको सन्मति दे भगवान।

१०१

कबीर कहते है कि सद्‌गुरु को सिकलीगर के समान होना चाहिए। जिस प्रकार सिकलीगर पत्थर को घुमा घुमाकर चाकू आदि की धार को तीक्ष्ण कर देता है उसी प्रकार सद्‌गुरु को भी शब्द (उपदेश) के माध्यम से साधक की देह को विषय-वासनाओ की जग से मुक्त दर्पण की भाँति स्वच्छ कर देना चाहिए।

विशेष : उपमा और रूपक।

(सिकलीगर और उसका मसकला का चित्र देखिए)

१०२

सच्चा प्रेम देश का व्यवधान नही मानता। कुमुदिनी पृथ्वी पर जलाशय मे रहती है और उसका प्रिय चन्द्रमा आकाशवासी है किन्तु प्रेम का आग्रह ऐसा प्रबल है कि कुमुदिनी का प्रिय स्वयं उसके पास सरोवर मे उतर आता है।

विशेष : तुलसी ने भी कहा है—

जाकर जापर सत्य सनेहू । सो तिहि मिलै न कछु संदेहू ।

१०३

निशान पर चोट पड रही है और गगन मण्डल मे युद्ध वाद्य बजने लगे हैं। यौद्धा ने वीरगति प्राप्त करने की लालसा से प्राणपण से विरोधी पक्ष को निश्शेष कर दिया है।

विशेष : अन्योक्ति के कारण इस साखी का साधना परक अर्थ भी है।

शून्य मण्डल मे कुण्डलिनी के विस्फोट से अनहद नाद प्रारम्भ हो गया है। मोक्ष प्राप्ति की कामना से साधक ने काम क्रोधादि शत्रुओ को शरीर के मैदान मे ध्वस्त कर दिया है।

(दमामा का चित्र देखिए)

१०४

अपने स्वामी के लिए युद्ध मे सन्नद्ध होने मे ही सच्चे शूरवीर की परीक्षा होती है। सच्चा सूरमा स्वामी के लिए लडता हुआ टुकडे-टुकड़े हो जाता है पर पीठ दिखा कर मैदान से भागता नही।

विशेष : १ कबीर ने भक्त की साधना को शूर की अविचल निष्ठा से तुलनीय माना है प्रस्तुत साखी मे 'सूरा' के वर्णन मे अप्रस्तुत रूप मे सच्चे साधक की व्यंजना हुई है।

२ अन्योक्ति।

३ प्रस्तुत दोहे मे 'सूरा' साधु है, 'धणी' ईश्वर है, 'पुरिजा-पुरिजा होना' सासारिक विषयवासनाओ का समूल नष्ट होता है और 'खेत' ससार है। जीवन्मृत साधना की व्यजना है।

१०५

जो मृत्यु सामान्य सासारिक के लिए भय का कारण है वही मेरे लिए परम आनन्ददायिनी है। मैं तो उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जब मेरी मृत्यु आयेगी। मृत्यु मुझे पूर्ण परब्रह्म के दर्शन करायेगी।

विशेष : मृत्यु की कामना कबीर इसलिए करते है क्योकि मृत्यु से जीव शरीर के सीमित अह से मुक्त होकर शुद्ध चैतन्य के साथ तदाकार हो सकेगा।

१०६

प्रेम के घर मे प्रवेश पाना एक कठिन कार्य है। यहाँ मौसी के घर के समान

सहज ही पैठ नही होती। इस घर मे भीतर जाने का मनोरथ वही पाले जो अपना सिर अपने ही हाथो काटकर अपनी हथेली पर रख सके अर्थात् जो सर्वथाभावेन अपना अहंकार नष्ट कर सके।

१०७

प्रेम सुलभ वस्तु नही है, वह मूल्य देकर खरीदी जा सकने वाली वस्तु भी नही है। उसकी फसल न तो खेतो मे उत्पन्न होती है और न ही वह बिक्री के लिए दूकानो मे सजा होता है। उसको प्राप्त करने का एक ही साधन है—अपना सिर प्रतिदान मे देना। प्रिय अपने प्रेमी मे उच्चनीच का कोई भेद नही करता। अपना सिर प्रतिदान मे दे सकने की क्षमता रखने वाला चक्रवर्ती या भिक्षुक समानभाव से प्रिय का प्रेम उपलब्ध कर सकता है।

१०८

ईश्वर का नाम लेना उसी के लिए शक्य है जो अपने हाथो से अपना सिर काट सके। ईश्वराराधन कठिन वस्तु है—यह शूरो का क्षेत्र है, प्राणो से मोह करने वाले कायरो का नही।

१०९

राम की भक्ति दु:साध्य कार्य है। यह तलवार पर चलने की भाँति कठिन है। जैसे तलवार की धार पर चलने वाला तनिक भी चचल होने पर प्राणो से हाथ धो बैठता है वैसे ही भक्ति साधना मे विचलित होना सर्वनाश को आमत्रित करना है। इन दोनो मार्गों मे वे ही समान भाव से सफल हो सकते है जो अचचल भाव से गतव्य की ओर बढते है।

विशेष : उपमा।

(खाँडा का चित्र देखिए)

११०

परब्रह्म की भक्ति मे जीत तो जीत है ही, हार भी जीत है क्योकि भक्ति की असम प्रतिद्वन्द्विता मे एक ओर यदि समर्थ से हारने का आनन्द है और दूसरी ओर समर्थ पर विजय पाने का गर्व। अत: परब्रह्म की सेवा मे सिर न्यौछावर करना पड़े तो यह घाटे का सौदा नही होगा। सिर चला जायेगा तो ब्रह्म की प्राप्ति हो जायेगी और यदि ब्रह्म नही मिला तो एक बहुत महान् लक्ष्य की साधना का सुख तो मिलेगा ही।

१११

कबीर मिथ्या आनन्द को सुख मानने वालो का मोहभग करते हुए कहते हैं कि सासारिक मायाजन्य आकर्षणो को सुखदायक मानने वाले यह भूल जाते हैं कि सारा ससार मृत्यु का आहार है। कुछ तो मृत्यु के मुख मे पडे हुए कौर है और कुछ मृत्यु द्वारा उठाये जाने वाले कौर अर्थात् कुछ तो विनाश को प्राप्त हो रहे है और कुछ शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होगे।

११२

दावाग्नि दग्ध लकड़ी भगवान से विनय करती है कि एक बार जलकर मैं कोयला बन चुकी हूँ। कहीं ऐसा न हो कि मैं अब किसी लुहार के हत्थे पड जाऊँ और मुझे पुनः जलना पडे।

विशेष : प्रस्तुत दोहे मे कबीर जीव के बारबार जन्म लेने के क्लेश का उद्घाटन कर रहे है। चेतन को पहिले अज्ञानवश जीव रूप मे भौतिक ताप मे दग्ध होना पडता है। पुन. अपने कर्मो के फलस्वरूप पुनर्जन्म लेना पडता है और संताप भोगना पडता है अतः कबीर ईश्वर से जन्म और पुनर्जन्म से मोक्ष की कामना करते है।

११३

सारे परिधान फटने वाले होते हैं, जिसने नाम रूप धारण किया है वह नष्ट होता ही है। अत: गुरु द्वारा प्रदर्शित तत्त्व को ही ग्रहण करना उचित है (क्योकि वही अमर है)।

११४

कबीरदास मानवमात्र की क्षण-भगुरता का आलेख करते हुए कहते हैं कि हमारा जीवन पानी के बुलबुले के समान अचिर-स्थायी है। जैसे तारो का अस्तित्व रात्रि व्यापी ही होता है, सबेरा होते ही वे छिप जाते है वैसे ही मृत्यु का आगमन होते ही हमारा अस्तित्व निश्शेष हो जायेगा।

विशेष : १. उदाहरण।

२. महादेवी ने भी इस भाव का उल्लेख किया है—

विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चंद
शून्य होने का भरने मेघ
दीप जलता होने को मंद

यहाँ किसका अनन्त यौवन,
अरे ! अस्थिर छोटे जीवन ।

११५

कबीरदास कहते है कि काल के आगमन से शरीर की सारी इन्द्रियाँ नष्ट हो गयी । जब वादक प्राण ही शरीर को छोड दे तो बेचारा यत्र बजे तो कैसे बजे ।

११६

कस्तूरी नामक सुगधित द्रव्य का निवास मृग की नाभि मे माना गया है। मृग अपनी ही नाभि की सुगध से अपरिचित किन्तु अभिभूत होकर यहाँ वहाँ भटकता रहता है । इसी प्रकार जीव के भीतर ईश्वर का निवास है किन्तु इस तथ्य से अपरिचित वह भिन्न-भिन्न प्रकार की साधनाओ मे दिग्भ्रमित रहा आता है और अपने प्रयास मे असफल होता है । जब तक वह अतर्मुख होकर ईश्वर का साक्षात्कार अपने भीतर ही नही करता तब तक उसकी गति कस्तूरी मृग के समान ही रहेगी ।
विशेष : उपमा ।

११७

आराध्य ईश्वर का निवास शरीर मे ही है । साधक भ्रमवश इस तथ्य से अपरिचित रहता है । कस्तूरी मृग के समान अपने अन्त· सत्त्व से अनभिज्ञ वह सासारिक झूठो मे उसे खोजता-फिरता है ।
विशेष : उपमा ।

११८

जैसे आँखो मे पुतली का निवास होता है उसी प्रकार शरीर मे ब्रह्म का आवास है । मूर्ख लोग इस सत्य से अपरिचित रहने के कारण बाह्य ससार मे उसका सधान करते फिरते हैं ।

११९

अपने निन्दक को अपना हितैषी मानना चाहिए । उसे अपने घर के आँगन मे कुटी बनवाकर सदा अपने निकट रखना श्रेयस्कर है क्योकि इतनी निकटता के कारण वह हमारे स्वभाव के दुर्गुणो को सदा देखता रहेगा, उनकी चर्चा करेगा और इस प्रकार बिना साबुन-पानी के ही हमारे स्वभाव को विकार रहित करने मे सफलता प्राप्त करेगा । ऐसा करने से साधक के मन मे क्षमा-भावना और विनयशीलता आयेगी वह अलग ।

१२०

निन्दक को अपने से दूर रखना समीचीन नही है। उसे प्रतिष्ठापूर्वक अपने पास ही स्थान देना चाहिए। वह निराधार और मिथ्या चर्चा करके साधु की सहन-शक्ति को पुष्ट करता है और उसमे आत्मालोचन का भाव जगाकर उसके शारीरिक तथा मानसिक विकारो को नष्ट करने मे सहायक होता है।

१२१

कबीर क्षुद्रातिक्षुद्र को भी उपेक्षणीय नही मानते। साधुजनो को उनका परा-मर्श है कि पैरो के नीचे रहने वाली घास को उखाडना श्रेयस्कर नही है। यदि उखाडी गयी घास तिनका बनकर कभी आँख मे चली जाये तो आँख मे भारी पीडा होती है।

विशेष : अन्योक्ति।

सबद्

१

कबीरदास परमात्मा से अपने विवाह का रूपक बाँधते हुए इन्द्रिय रूपी सखियों से मंगल गान गाने का अनुरोध करते है। आज बर के रूप मे साक्षात् पर-ब्रह्म उनके द्वार पर पधारे है। कबीर अपनी आत्मा को सौभाग्यकांक्षिणी वधू के रूप मे प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि आज मैं अपने आराध्य के प्रति तन और मन दोनो से अनुरक्त हूँ। मेरी आत्मा विवाह के योग्य है, वर पचतत्त्वो की बरात लेकर उपस्थित है—इससे बडा सौभाग्य किसी कन्या का क्या हो सकता है ? शरीर मे स्थित मानस को मैं विवाह वेदिका का स्थान दूँगा। इस वैवाहिक अनुष्ठान मे ब्रह्मा वेद मत्रो का पाठ करेंगे। यह मेरा परम सौभाग्य है कि आज मैं राजाराम के साथ अग्निवेदिका की परिक्रमा कर वैवाहिक बधन मे बँधूगी। तैंतीस करोड़ देवता इस विवाह के साक्षी है और अट्ठासी हजार मुनिवर भी आज अतिथि के रूप मे उपस्थित है। कबीरदास सतोष पूर्वक कहते है कि आज अविनाशी पुरुष से मेरा विवाह सम्पन्न हो गया।

विशेष : १ वैवाहिक विधियो का सर्वांग चित्र।

२. समासोक्ति।

२

यह कबीर की एक अत्यन्त प्रसिद्ध उलटबाँसी है। लोक व्यवहार मे सामान्यतया जो घटित होता है उसका विलोम इस उलटबाँसी मे घटित कर कबीर साधना और जीवन के क्रिया-कलापो का विवेचन कर रहे है। कबीर कहते है कि भाई ! यह कैसा अचम्भा है कि सिंह जो गायो का भक्षक होता है उनका रक्षक बना हुआ उन्हे चरा रहा है। यहाँ सिंह ज्ञान का प्रतीक है और गाये इन्द्रियो की। यह भी अचम्भे की ही बात है कि पहिले बेटा उत्पन्न हुआ और माँ बाद मे उत्पन्न हुई। किन्तु यहाँ

'पूत' 'जीव' के लिए प्रयुक्त हुआ है और 'माइ' माया के लिए। तात्पर्य यह कि जीव माया का परिणाम है। सामान्य लोकाचार मे उसे मायात्मज कहना चाहिए। किन्तु जीवात्मा जन्म के समय ससार से निर्विकार रहती है और क्रमशः बडे होने पर ही उसमे सासारिक सम्बन्धो और वस्तुओ के प्रति ममता जागृत होती है। यही माया है। सामान्य जीवनै मे चेला गुरु के चरण स्पर्श करता है, किन्तु कबीर की इस उलटबाँसी मे चेले के चरणो का स्पर्श गुरु कर रहा है। यहाँ चेला निष्ठावान साधक है और गुरु शास्त्र-ज्ञान है। ज्ञान निष्ठा के आगे प्रणत है। जल मे रहनेवाली मछली वृक्ष पर चढ करके सन्तति को जन्म दे रही है अर्थात वासना के मध्य निवास करने वाली कुण्डलिनी वृक्ष रूपी मेरुदण्ड पर आरूढ होकर साधक को आनन्द प्रदान कर रही है। बिल्ली को मुर्गे ने उदरस्थ कर लिया है। यहाँ मुर्गा साधक है और बिल्ली माया है। बैल को छोडकर सामान भरने की थैली अपने आप घर आ गयी है। अर्थात् आत्मा रूपी 'गौनी' 'बैल' रूपी शरीर को छोड करके अपने घर अर्थात् परमात्मा के निकट आ गयी है। कुत्ते को बिल्ली ने पकड लिया है अर्थात् वासनाग्रस्त जीव को बिल्ली ने अपने अधीन कर लिया है। सामान्यतया पेड की जडे नीचे है और शाखाएँ ऊपर होती है, किन्तु मानव शरीर ऐसा है जिसकी शाखाएँ तो नीचे है परन्तु मूल ऊर्ध्व मे है। अर्थात् शरीर के मूल स्थान ब्रह्मरन्ध्र मे विविध इच्छाओ को तृप्त करने वाले परमब्रह्म के दर्शन प्राप्त होते है। कबीर अपने इस पद की महत्ता और गूढता को रेखाकित करते हुए कहते हैं कि इस पद का मर्म समझने वाले श्रोता या पाठक को तीनो लोको का ज्ञान सहज ही प्राप्त हो जायगा।

विशेष : १ विभिन्न विद्वानो ने प्रस्तुत उलटबाँसी मे प्रयुक्त प्रतीको के अलग अलग अर्थ किए है। जैसे डा० रामकुमार वर्मा कुत्ता का अर्थ अज्ञानी और बिल्ली का अर्थ माया करते है। डा० मुशीराम शर्मा कुत्ते को लोभ या मत्सर का प्रतीक और बिल्ली को विवेकमयी बुद्धि का प्रतीक मानते है। डा० भगीरथ मिश्र ने बिल्ली से माया तथा कुत्ते से अज्ञानी और लम्पट जीव का अर्थ ग्रहण किया है।

२ गीता मे भी 'अधोमुखी वृक्ष' का ऐसा ही उल्लेख हुआ है। गीता मे इसे ही 'अश्वत्थ' वृक्ष कहा गया है। सुमित्रानन्दन पन्त ने भी लिखा है—
अधोमूल अश्वत्थ वृक्ष, शाखाएँ संस्कृतियाँ वर। (महात्माजी के प्रति)

३. गर्वोक्ति तथा अतिशयोक्ति।

३

कबीरदास ने अपने काव्य मे जनपदीय जीवन के विभिन्न उपकरणो का प्रतीको के रूप मे प्रयोग किया है। कबीरदास स्वय को चरखा चलानेवाली मानते हुए अपने

शरीर और आत्मा के पारस्परिक सम्बन्धो की चर्चा करते हुए कहते है कि मेरा निरन्तर गतिशील शरीर जो चर्खे के समान है नष्ट न हो। यह शरीर एक महान् उद्देश्य की पूर्ति का साधन है। मैं अपने ननद के भाई (अर्थात् पति अर्थात् परमेश्वर) की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मैं इस शरीर रूपी चर्खे से भक्ति रूपी बारीक सूत कातूँगी। मेरा जन्म जल मे हुआ है, विकास भूमि पर हुआ है और मैं नगर मे पहुँच गयीं हूँ। मैंने इस माया नगरी मे एक विलक्षण बात देखी है कि बेटी बाप को उत्पन्न कर रही है। यहाँ जल पिता का शुक्र है, थल माता की रज है और नगर मे आना ससार मे जीवका शरीर ग्रहण करना है। बिटिया माया है और पिता जीव है। ईश्वर से उत्पन्न माया रूपी पुत्री ईश्वर के अश जीव को उत्पन्न करती है। माया रूपी यह बेटी जीव रूपी पिता से कहती है कि हे पिता, उत्तम वर का सधान कर आप उससे मेरा ब्याह कर दीजिए। जब तक आपको अच्छे वर को खोजने मे सफलता नही मिलती तब तक आप ही मुझे अपनी विवाहिता बना लीजिए। माया को स्वामी के रूप मे जब तक कोई पात्र नही मिलता तब तक वह परमात्मा की ही वशवर्तिनी होती है। परमात्मा माया का पिता भी है और भर्त्ता भी। सुबुद्धि के घर लोभ का आगमन हुआ है। वह उतने ही विश्वास से आया है जैसे कोई भाई अपनी बहिन के घर आता है। उसने चूल्हे मे जलनेवाली अग्नि को बुझा दिया और अट्टहास करते हुए फल से ही उसका स्वागत किया। सुबुद्धि यहाँ सद्गुरु है और लोभी व्यक्ति चेला है। चूल्हे की अग्नि का बुझाना भोग सामग्री और सासारिक साधनो को समाप्त करना है। फल आध्यात्मिक साधन हैं। कबीर कहते है कि सारा ससार भले ही समाप्त हो जाय किन्तु वह बढई जिसने चरखें का निर्माण किया है कभी न मरे। अर्थात् ससार तो मर जाता है किन्तु ससार को बनाने वाला ईश्वर अमर होता है। यह शरीर रूपी चर्खा विधवाओ का जीवन सगी है। अर्थात् जैसे विधवाएँ चरखे के माध्यम से अपनी जीविका उपार्जित करती है वैसे ही वियोगिनी आत्मा शरीर के माध्यम से ही ईश्वर को पा सकती है। कबीरदास अपनी उलटबाँसी शैली का आश्रय लेते हुए कहते है कि इस पद की व्याख्या करने वाला व्यक्ति पण्डित और ज्ञानी है। साधक को पूर्व परिचय से ही गुरु की प्राप्ति होती है। यही गुरु भक्त को ससार सागर से पार उतार सकता है।

विशेष : १ कबीरदास की अन्य उलटबाँसियो के समान इस उलटबाँसी के प्रतीको के सम्बन्ध मे भी विद्वानो मे मतभेद है। जैसे कुछ विद्वानो ने बढ़ई को गुरु कहा है तो कुछ ने ज्ञान और कुछ ने ईश्वर।

२. रूपकातिशयोक्ति।

४

मन को प्रबोध देते हुए कबीर कहते है कि हे मेरे मन, तू निरतर सावधान

रहना । यदि तू असावधान हुआ तो तू अपनी मूल्यवान सम्पदा से हाथ धो बैठेगा । असावधानी के क्षणो मे क्रोधादि मनोविकार हमारे मन मे प्रविष्ट हो जाते है । षट्-चक्रो से युक्त हमारा शरीर एक स्वर्ण कक्ष है जिसके भीतर वास्तविक वस्तु अर्थात् ईश्वर का अस्तित्त्व है । इस शरीर के अवरुद्ध द्वार कुण्डलिनी रूपी चाभी के लगते ही उन्मुक्त हो जाते है । जब ईश्वरीय ज्ञान का उदय होता है तो पचेन्द्रियाँ शिथिल पड जाती हैं । साधक शून्य मण्डल मे निवास करने लगता है और वह आयु और मृत्यु की सीमाओ का अतिक्रमण कर लेता है । चेतना ऊर्ध्वारोहण करती हुई गगन मण्डल में पहुँचकर सहस्रार चक्र से तद्रूप हो जाती है । कबीर कहते है कि मैंने इस सम्पूर्ण स्थिति पर भलीभाँति विचार किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि ईश्वर के साक्षात्कार के लिए आन्तरिक साधना ही पर्याप्त है, बाह्य रूप मे कही आने जाने की आवश्यकता नही है । कबीर अपनी आन्तरिक साधना का मूल्य आँकते हुए सन्तोष पूर्वक कहते हैं कि राम रूपी रत्न पाकर मेरे मन के सारे सशय विनष्ट हो गये है ।

विशेष : रूपकातिशयोक्ति तथा रूपक ।

(षट्चक्र और कुंडलिनी का चित्र देखिए)

५

कबीरदास कहते है कि जब मैंने अपने आपको आत्म तत्त्व मे रग दिया तभी मैं अपनी वास्तविक सत्ता का साक्षात्कार कर सका । जो अपने को इस प्रकार रँगना जानता है, मैं उसी को मान्यता देता हूँ । मैने जब अपनी मानसी वृत्तियो को अन्त-र्मुखी किया और मैं अपने आपके रग के साथ एकाकार हो गया तो लोग मुझे विक्षिप्त समझ बैठे पर ससार के लोग तो मूर्ख हैं । उन्हे उस रग की पहिचान नही है जिसमे ससार का कणकण रँगा हुआ है । यह रंग ऐसा है जो न तो कभी उत्पन्न होता है और न कभी नष्ट ही होता है । वस्तुत: आत्मरग मे किसी प्रकार का आवागमन नही होता, वहाँ ज्यो का त्यो स्थिर रहता है । मैं भी उसी के रंग के साथ पूर्णत: तद्रूप हो गया हूँ ।

६

कबीर परब्रह्म राम से अनुरोध पूर्वक कहते है कि यदि तुम्हे अपने भक्तो से प्रेम है तो एक विवाद का निवारण करो । वे अपने आराध्य से यह जानना चाहते हैं कि ब्रह्म बड़ा है या वह (ईश्वर) जिसने हमारी आत्मा को उत्पन्न किया है । वेदो मे और वेदो के आदि स्रोत मे कौन बड़ा है, कबीर के सामने यह भी समस्या है । यह मन बडा है अथवा वह बडा है जिसे मन मानता है । राम और राम को जानने वाले

मे वस्तुतः कौन बडा है। यह जिज्ञासा भी कबीर को उद्वेलित कर रही है। कबीर ईश्वर से कहते है कि यह सोच-सोचकर मैं अत्यन्त उदास हो गया हूँ कि साधु सगति और तीर्थाटन में कौन अधिक काम्य और श्रेयस्कर है ?

विशेष : इस पद से यह आभास मिलता है कि कबीर ब्रह्मा और परब्रह्म मे अतर मानते है। सामान्यतया ब्रह्मा (त्रिदेव मे से एक) को सृष्टि का जनक माना गया है किन्तु कबीर परब्रह्म को सृष्टि का निर्माता मानते है।

७

पडितो द्वारा प्रतिपादित वादो के भ्रमजाल को मिथ्या घोषित करते हुए कबीर कहते है कि मात्र राम के नामोच्चारण से मुक्ति उसी प्रकार असम्भव है जैसे शक्कर शब्द का उच्चारण करने से मधुर स्वाद की प्रतीति नही होती। आग शब्द कहने से यदि पैर जल जाते, जल कहने मात्र से यदि प्यास बुझ जाती और भोजन का नाम भर लेने से यदि भूख मिट जाती तो राम कहने मात्र से सब को मोक्ष मिल जाता। तोता मनुष्य का अनुकरण कर बिना किसी भक्तिभाव के अथवा ईश्वर माहात्म्य के ज्ञान के राम का नाम लेता है किन्तु मनुष्य का साथ छूटते ही वह ईश्वर का नाम लेना भूल जाता है और पुनः राम का स्मरण नही करता। कबीर उन सब को जो विषयवासनाओ के प्रति आसक्त हैं और ईश्वर के भक्तो को हास्यास्पद समझते है सावधान करते हुए कहते है कि ऐसे लोगो को यमपुर जाना पड़ेगा अर्थात् उन्हे मोक्ष नही मिल सकता क्योकि वे ईश्वर के प्रेम से परिचालित नही है।

८

कबीर आत्मा की अविनश्वरता का उद्घोष करते हुए कहते है कि मैं अमर हूँ, यह ससार ही मरणधर्मा है। मुझको रामरूपी सजीवनी प्राप्त हो गयी है जिसने मुझे अमरत्व प्रदान किया है। अब मुझे मृत्यु के रहस्य का ज्ञान हो गया है। मरते वे ही है—जो राम से अनभिज्ञ होते है। मैं राम को जान चुका हूँ अत अब मैं नही मरूँगा। वैष्णव विरोधी शाक्त मर जाते है किन्तु सन्त लोग अमर होते है और राम रसायन का छक कर पान करते है। जब तक ईश्वर अमर है तब तक मैं भी अमर हूँ। यदि ईश्वर मरेगा तो मैं भी मरूँगा अन्यथा नही। कबीरदास कहते है कि मैंने अपने मन को ईश्वर से एक कर दिया है और मैं अमर होकर अनत सुख का अनुभव कर रहा हूँ।

विशेष : नाथ सप्रदाय मे मोक्ष की जो परिभाषा की गयी है वह 'मन मनहिं मिलावा' से तुलनीय है—

'मनसा मनः समालोक्यते स एव मोक्षः' (अमरौघ शासन)

६

सामान्य जन को प्रबोध देते हुए कबीर कहते है कि हे भाई, जानबूझकर सत्य से अनभिज्ञ मत बनो। सपूर्ण सृष्टि मे ईश्वर परिव्याप्त है और ईश्वर मे सपूर्ण सृष्टि सन्निविष्ट है। वह प्रत्येक प्राणी मे विद्यमान है। ईश्वर ने एक ज्योति का निर्माण किया है, वह ज्योति निंदनीय नही हो सकती। यह संपूर्ण ससार उस प्रकाश रूप चेतन से व्युत्पन्न है अत इसमे अच्छे और बुरे का भेद करना अच्छा नही है। मेरे सद्गुरु ने मुझे गुड के समान सुस्वादु ज्ञानोपदेश दिया है और मैं जिस ईश्वर की प्रकृति से अपरिचित था वह अब मुझे समग्रतः प्राप्त हो गया है और मैं सपूर्ण ससार मे ईश्वर के दर्शन कर पा रहा हूँ।

१०

आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धो का अन्योक्ति के माध्यम से आख्यान करते हुए कबीर कहते है कि आत्मा रूपी कुमुदिनी ! तू म्लान और मूर्च्छित क्यो हो रही है। तू तो आकण्ठ ब्रह्म रूपी चेतना-शक्ति मे डूबी हुई है। तेरा जन्म परमात्मा से हुआ है और परमात्मा मे ही तू निरतर तल्लीन रहती है। न नीचे से तुझे किसी दाह का सामना करना पड़ता है और न ऊपर से ही। लगता है कि तूने परमात्मा को छोडकर किसी अन्य से (विषयवासनाओ) से आसक्ति सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। कबीर कहते है कि जो जल (परमात्मा) से स्वय को एकरूप कर लेते हैं, स्वय को उस अशी का अश बना देते है वे कभी नष्ट नही होते।

विशेष : अन्योक्ति।

११

यह माया मोह से युक्त ससार उस बाँगड़ प्रदेश के समान है जहाँ निरतर लू चलती रहती है। कबीर उस मायालोक की वास्तविकता का परिचय देते हुए साधक से कहते हैं कि ऐसे बाँगड प्रदेश से बचकर रहना ही श्रेयस्कर है क्योकि वहाँ जाने पर जलने की आशंका है। कबीर कहते हैं कि इस ससार मे कोई भी धैर्यवान व्यक्ति मुझको नही मिला, सभी भ्रम मे पड़े हुए है। उनके सिर पर जो धूल पड़ती है उसे वे अबीर समझकर ग्रहण करते है। यह संसार ऐसा कठिन है कि इसमे न तो सद्गुरु की उपदेशवाणी का कोई जलाशय ही मिलता है और न कही सत्सग का जल ही प्राप्त है। यहाँ न तो कोयल मिलती है और न तोता ही कही दिखायी देता है। साधक निरन्तर कठिनाइयो के मार्ग पर आगे बढ़ने को बाध्य होता है।

कबीरदास मायालोक से भक्त को भक्ति के लोक मे जाने का परामर्श देते है । इस भक्ति-लोक की तुलना कबीर मालवा जनपद से करते है जहाँ साधक को कोई कठिनाई नही उठानी पडती और उसे प्रत्येक पद पर तृप्ति मिलती जाती है । कबीरदासजी कहते है कि यह भक्ति का क्षेत्र ही मेरा घर है । मेरा मन इसी भक्ति मे रम रहा है । इस आध्यात्मिक अनुभव का मैं केवल आस्वादन कर सकता हूँ । उसे शब्दो के माध्यम से व्यक्त नही कर सकता ।

विशेष : १. इस पद के द्वारा कबीर के समय भारत के बाँगड और मालवा-क्षेत्र के सम्बन्ध मे प्रचलित जन-धारणा का परिचय मिलता है ।

२. यह एक समासोक्ति है । बाँगड़ू देश सासारिक जीवन है, लू वासना है । उसका ताप दाझन है । कोकिल भगवान का गुणगान करने वाली भक्त है और तोते नाम-स्मरण करने वाले । हस साधक है । मालवा भक्ति का प्रतीक है । घर स्वरूप-स्थिति है । वह ज्ञान, भक्ति और साधना का समन्वय है ।

३. व्याख्याकारो ने बाँगड का अर्थ उबड़-खाबड किया है, किन्तु यह बगड या बाँगरू प्रदेश है जो वर्तमान हरियाना प्रदेश का पर्यायवाची कहा जा सकता है । यहाँ की तेज लू प्रसिद्ध है ।

१२

कबीरदास ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के जन-जीवन से अपने अधिकाश प्रतीको का चयन किया है । इस पद मे शराब बनाने की प्रक्रिया के रूपक द्वारा हठयोग के माध्यम से ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग का परिचय देते हुए वे कहते है कि हे अवधूत ! जिस प्रकार शराब पीकर शराबी मतवाला हो जाता है, उसी प्रकार मेरा मन भी ईश्वर की भक्ति मे मत्त हो रहा है । वह उनमनी अवस्था द्वारा शून्य क्षेत्र मे पहुँचकर पूर्ण तल्लीनता के साथ अमृत का पान कर रहा है । यह महारस ऐसा दिव्य है कि तीनो लोक मुझे सूझने लगे है । मैंने यह महारस विधि-पूर्वक तैयार किया है । यह संसार एक शराब की भट्टी के समान है और इस भट्टी पर मैंने ज्ञान के गुड और ध्यान के महुआ को चढा दिया है । सुषुम्ना नली है जो एक ओर भट्टी और दूसरी ओर गुड और महुए के मिश्रण के बीच सम्पर्क स्थापित करती है । इस भट्टी मे मैंने काम और क्रोध को झोक दिया है और इला-पिंगला का ईंधन भट्टी मे डाला है । इन समस्त विधानो के फल-स्वरूप मदिरा धीरे-धीरे बूँद-बूँद करके टपक रही है । साधक उसका पान कर रहा है और वह सासारिक चिन्ताओ और उद्वेगो से मुक्त हो गया है । इस मदिरा की मस्ती मे साधक शून्य-मण्डल मे बजने वाले मृदग का स्वर सुन रहा है और उसका

मन आनन्द से नाच-नाच उठता है। यह अमृत का प्रसाद मैंने सद्गुरु की कृपा से प्राप्त किया है। अर्थात् इस स्वर्गीय सुरा-पान मे उसने ही मुझे दीक्षित किया है। मेरी सुषुम्ना सहजावस्था मे ही रहने लगी है। इस मदिरा के एक या दो घूँट पीने से तृप्ति नही होती। परम आनन्द प्राप्त करने के लिए साधक को उसे आकण्ठ पीना चाहिए। ऐसा करने से शरीर के सारे क्लेश दूर होते हैं। जैसे मद्यप को सासारिक मर्यादा का कोई ध्यान नही रहता और वह दूसरे ही लोक मे निवास करने लगता है उसी प्रकार महारस का पान करने वाले साधक को भवबन्धन से मुक्ति मिल जाती है और वह परमात्मा के साथ तद्रूप हो जाता है।

विशेष : १ 'नारी' का अर्थ नारी या मधुबाला भी हो सकता है।

२ साग रूपक।

३. कबीरदास कभी भी काव्य को अपनी मान्यताओ पर हावी नही होने देते। वे रूपको तथा प्रतीकोका प्रयोग अपनी मान्यताओ के प्रतिपादन के लिए करते हैं। महारस को ज्ञान और ध्यान का मिश्रण बताकर हठयोग के 'अमृत' से अपनी साधना की उत्कृष्टता व्यक्त कर रहे है।

१३

स्वय को परमात्मा रूपी मा का शिशु स्वीकार करते हुए कबीर मा से अपने दुर्गुणो के लिए क्षमा चाहते है। माता तो अत्यत्र वात्सल्यमयी होती है अत बेटे के अपराधो को मा ध्यान मे ही नही लाती। कभी-कभी तो बेटा लाड मे मा के बाल भी खीच लेता है और उसे आघात पहुँचाता है किन्तु फिर भी मा बेटे के प्रति अपनी ममता कम नही करती। कबीर कहते है कि मैंने एक निष्कर्ष निकाला है—वह यह कि बेटे को दु.खी देखकर मा कभी सुखी हो ही नही सकती।

कबीर अपने इस निष्कर्ष द्वारा ईश्वर से यह कहना चाहते है कि मैं तो दु:खी हूँ अत तुम भी दु खी होगे ही—यदि स्वय को सुखी करना चाहो तो पहिले मुझे सुखी करो।

विशेष : ईश्वर को मा के रूप मे स्वीकार करना भक्तो की एक प्राचीन पद्धति है जैसे 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' आदि मे।

१४

कबीरदास अपने मन को आत्म विश्वास दीप्त करते हुए कहते है कि हे मेरे पागल मन! तू असमंजस छोड दे। अब तो ईश्वर के चरणो मे बलि होने के अतिरिक्त तेरी और कोई गति नही है। जौहर करने के लिये कृतसकल्प स्त्री जब हाथ मे सिंदूर-

पात्र ले लेती है तो वह मन का सारा सशय छोड देती है। उसी प्रकार तू भी लोभ और मोह का भ्रम छोड करके नि:शक होकर ईश्वर के प्रेम मे मग्न हो जा। जो सच्चा वीर होता है वह युद्ध मे वीर गति प्राप्त करने से नही डरता और जो सती होती है उसे पति की मृत्यु के बाद घर गृहस्थी से कोई मोह नही होता। वास्तव मे जो लोकाचार की परवाह करता है। आप्त वाक्य मे विश्वास करता है और अपने पुरखो की मर्यादा का पालन करना चाहता है वही नाना प्रकार के बधनो को आमत्रित करता है। प्रेम के मार्ग मे आधा रास्ता पूरा कर लेने के बाद पीछे लौटना असभव है क्योकि इससे प्रेम की मर्यादा खडित होती है और ससार को भी उपहास करने का अवसर मिलता है। इस ससार मे जो राम का भक्ति भाव से स्मरण करते है वही सच्चे है और शेष समस्त लोग भ्रष्टाचारी है। कबीरदास अपने आप को विश्वस्त करते हुए कहते है कि मैं राम के नाम का बीच मे साथ नही छोडूँगा। येन-केनप्रकारेण मैं अपने लक्ष्य को प्राप्त कर ही लूँगा।

१५

कबीरदास शरीर के मोह की झझटो का लेखाजोखा लगाते हुए कहते है कि मैं अब इस शरीर रूपी ग्राम मे निवास नही करूँगा क्योकि चित्र गुप्त रूपी मुनीम प्रत्येक क्षण का हिसाब माँग रहा है। यह देह एक गाँव है। प्राण उस गाँव का सरपच है और पाँच किसान इस गाँव के निवासी हैं। इन पाँच किसानो के नाम है नैनुवा, नकटुवा, श्रवनुवा, रसनुवा और इन्द्रिया। ये पाँचो किसान बड़े उद्दण्ड है और किसी मर्यादा का पालन नही करते। धर्मराज ने जब इन किसानो से हिसाब-किताब तलब किया तो उनके पुण्य खाते मे तो कुछ भी जमा न निकला किन्तु उनके ऊपर उधार बहुत निकला। इस स्थिति से आतकित होकर किसान रूपी पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ फरार हो गई और यमदूतो ने जीव को ही पकड लिया। कबीर कहते है कि हे सतो! शरीर का न्याय सोचसमझकर कर लो। इस बार जीव से जो भूल हुई है उसके लिये वह क्षम्य है। जीव यह आश्वासन देता है कि इस बार क्षमा मिल जाने पर वह पुनः लौटकर भवसागर मे ग्रस्त नही होगा।

१६

सृष्टि निर्माता ईश्वर हर कही है और प्रत्येक स्थिति मे है। वह शत्रु को मार कर पैरो से रौद कर अस्थिककाल बना देता है। वह अपने भक्त के लिए नर्क को भी स्वर्ग बना देता है और समस्त द्वन्द्वो को नष्ट कर देता है। यह ससार एक विष-वन है जिसमे प्राणियो का जाल बिछा हुआ है। यहाँ अज्ञान का पर्दा छाया हुआ है और ईति-भीति की दावाग्नि चारो ओर प्रज्ज्वलित हो रही है। मैं तो इस भीषण जगल

मे गुरु के साथ चलने के कारण सुरक्षित रहा आया। कबीर कहते है कि हे ईश्वर ! मैं तो दीनातिदीन हूँ और आप महा-महान् हैं, मैं पृथ्वी के समान निरीह और सहिष्णु हूँ और ईश्वर आकाश के समान अनन्त और गौरवशाली। दोनो का मिलना एक कठिन व्यापार है किन्तु जिस प्रकार पृथ्वी और आकाश के बीच मे शून्य की स्थिति होती है उसी प्रकार साधक और परमात्मा के बीच मे शून्य मे एक अमृत की नदी है जहाँ भक्त स्नान करता है। कबीर अपने मन को प्रबोध देते हुए कहते है कि तू ईश्वर का चिन्तन कर और निश्चित होजा। तू जहाँ-जहाँ होगा वहाँ-वहाँ ईश्वर भी तेरे साथ होगा। ससार मे जितनी भी जीवात्माएँ है वे सब की सब ईश्वर से उत्पन्न जल की बूँदे है। ये सारी बूँदे उसी ईश्वर मे गर्क हो जाती है। कबीर कहते है कि मनुष्य को ईश्वर का ध्यान करना चाहिए और उसी के सरक्षण मे रहना चाहिए।

विशेष : १. कबीर का यह पद फारसी और पंजाबी के प्रभाव का उद्घाटक है।
२. रूपक।

१७

कबीर ईश्वर से अपनी विरहानुभूति का बखान करते हुए कहते है कि तुम्हारे वियोग का घाव बडा गहरा है, मुझे बडी वेदना हो रही है। यह दु ख तुम्हारा दिया हुआ है, तुम्ही इस दु·ख को समझ सकते हो। और मेरा दूसरा है भी कौन जिससे मैं व्यथा-कथा कहूँ। मेरे प्राण विरह के भाले से बिद्ध है। यह भाला मेरे प्राणो मे धँसा हुआ है और निरतर मुझे टीस पहुँचा रहा है। मेरे शरीर के सताप को समझने का सामर्थ्य किसी मे नही है। सत्गुरु ने मुझे तुम्हारा जो परिचय दिया है उसने मेरे शरीर को चीर कर रख दिया है। ससार मे न तो तुमसा कोई वैद्य है और न मुझसा कोई रोगी ही—इस विरह व्यथा को मै पता नही कैसे झेल पाऊँगा। मैं रात दिन तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ किन्तु मेरा आराध्य प्रिय अभी तक आया नही। कबीर कहते है कि तुम्हारे अभाव मे मुझे भारी दुःख सहना पड़ रहा है। तुम्हारे दर्शनो के बिना मैं कैसे जीवित रहूँगा।

विशेष : मि० मीरां की प्रभु पीर मिटेगी जब बैद सँवलिया होय।

(भाला का चित्र देखिए)

१८

राम को अपना पति और स्वय को राम की पत्नी घोषित करते हुए कबीर कहते है कि हे प्राणवल्लभ, अब घर लौट आओ, तुम्हारे बिना मेरा शारीरिक सताप

सधान किया है किन्तु मुझे असफलता ही हाथ लगी है। इसी अनुभव के आधार पर मैं कहती हूँ कि ससार के इन्द्रिय-गम्य आकर्षण रग-बिरगे फूलो के समान है जो चार दिनो मे मुरझा जाते है। अत' ऐसी अचिरस्थायी वस्तुओ के मोह मे पडकर अपने गन्तव्य को भूल जाना उचित नही है। जब इस ससार मे काल की अग्नि प्रज्ज्वलित होगी तब तू अपनी रक्षा के लिए कहाँ शरण ढूँढेगा। भ्रमरी भ्रमर से प्रबोध पूर्वक कहती है कि हे मन, वृद्धावस्था मे हमारी सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती है किन्तु मन शिथिल नही होता। विषय-वासनाओ के प्रति उसकी लालसा बढती ही जाती है। शारीरिक क्षमताएँ वृद्धावस्था मे नि.शेष हो जाती है। ऐसी अवस्था मे भ्रमर को प्यार करनेवाली भ्रमरी के पास सिर धुनने के अतिरिक्त और कौन-सा रास्ता बचता है। जब मन ने अपने चारो ओर देखा और अपने आप को पूर्णत. निराश्रित और अरक्षित पाया तब सहानुभूति पूर्वक भ्रमरी ने सम्बल देकर उसे भगवान तक पहुँचाया। कबीर कहते है कि हमारा मन चंचल है। उसकी एकमात्र गति ईश्वर के चरणो मे है। बिना ईश्वर भक्ति के यम उसे अपने दाँव मे ले लेता है।

विशेष : रूपकातिशयोक्ति और साग रूपक।

२१

कृषक-जीवन से प्रतीको का चयन करते हुए कबीर कहते है कि जीवन रूपी खेत यत्न रूपी साधना के अभाव मे पशु रूपी पच विकारोका आहार बन जाता है। ये काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह रूपी पशु रात दिन खेत मे ही डटे रहते है, भगाने से न तो भगते है और न डराने से डरते ही है। इन पशुओ के आकर्षण पृथक्-पृथक् है और इनके कारण ये भी अलग-अलग है अर्थात् ये सब विभिन्न प्रकार के विघ्न उपस्थित करते है। इन विकारो से बहुतो ने लोहा लिया किन्तु ये शेखी के मारे किसी को अपने सामने कुछ गिनते ही नही हैं। किन्तु कबीर आत्मविश्वासपूर्वक कहते है कि मैंने विषयवासनाओ से निपटने के लिए अपनी जीवन रूपी खेती के चारो ओर सयम रूपी बाड लगादी है और अब पचविकार मेरी फसल का कुछ नही बिगाड पायेगे—यही नही चेतना रूपी कृषि की रक्षा के लिए,मैंने गुरु को काकभगोडा के रूप मे खेत में स्थापित कर दिया है और रामनाम रूपी दो अक्षरो की खेत का रखवाला बना दिया है।

विशेष : सामान्यतया सत साहित्य मे मृग को चचलता के कारण मन का प्रतीक माना गया है किन्तु यहाँ विशेषण में प्रयुक्त होने के कारण 'मिरगनि' पच विकारो या पच इन्द्रियो का बोध देते है।

(बिम्भूका का चित्र देखिए)